भारतीय नेताओं की दृष्टि में

तिब्बत

तथा

लोकसभा दस्तावेज़

भारत तिब्बत समन्वय केन्द्र
H-10, लाजपत नगर–3, नई दिल्ली

INDIA TIBET
COORDINATION OFFICE

2017

प्रथम संस्करण : 1998
अंतरराष्ट्रीय एवं सूचना संबंध विभाग
केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन
धर्मशाला 176215
हिमाचल प्रदेश (भारत)

द्वित्तय संस्करण : 2008
तृत्तिय संस्करण : 2011
चतुर्थी संस्करण : 2015
पंचमी संस्करण : 2017

प्रकाशक :
भारत तिब्बत समन्वय केन्द्र
एच–10, द्वित्तय थल,
लाजपत नगर–3,
नई दिल्ली–110024 (भारत)

फोन : 011–29830578
टैलीफैक्स : 011–29840968
ई–मेल : indiatibet7@gmail.com
वैबसाईट : www.indiatibet.com

मुद्रक : वी एन प्रिन्ट–ओ–पेक, नई दिल्ली–110020
ई–मेल : vnprints@gmail.com

भारतीय राष्ट्रीय ध्वज

तिब्बती राष्ट्रीय ध्वज

भूमिका

साल 1949 में चीनी आक्रमण से पहले दो हजार साल से ज्यादा समय तक तिब्बत वास्तव में और कानून से एक आजाद देश था। शताब्दियों तक तिब्बत दुनिया के दो सबसे ज्यादा जनसंख्या वाले देशों भारत और चीन के बीच एक प्रभावी बफर राज्य की भूमिका निभाता रहा, जिससे इस इलाके में शांति और स्थिरता सुनिश्चित हो सकी।

समूचे इतिहास में तिब्बत के भारत के साथ बहुत ही करीब और मैत्रीपूर्ण संबंध रहे। तिब्बत और भारत के बीच सीमा तब तक दोनों देशों के तीर्थयात्रियों और व्यापारियों के लिए मुक्त रूप से आवाजाही का रास्ता बनी रही, जब तक तिब्बत पर चीन ने जबरन कब्जा नहीं कर लिया। इस कब्जे की वजह से ही परमपावन दलाई लामा के साथ करीब 80,000 तिब्बतियों ने भारत में शरण ली।

हम तिब्बती इस मामले में भाग्यशाली रहे हैं कि भारत में निर्वासन के पिछले 39 वर्षों में हमारे भारतीय मित्रों की तरफ से हमें निरंतर समर्थन मिला है। निर्वासन के शुरुआती वर्षों में श्री राजगोपालाचारी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, डॉ. राममनोहर लोहिया, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, श्री जयप्रकाश नारायण और आचार्य कृपलानी ने तिब्बती जनता के आंदोलन की हिमायत की। इसके बाद से कई अन्य नेता समय–समय पर तिब्बत का मसला उठाते रहे हैं। वास्तव में इन भारतीय नेताओं ने तिब्बत के आंदोलन के समर्थन में भारतीय जनता की गहरी भावना को ही आवाज दी।

साल 1949 में ही जब तिब्बत पर चीनी आक्रमण की शुरुआत हुई, तो सबसे पहले डॉ. राम मनोहर लोहिया ने भारत सरकार को तिब्बत पर चीनी कब्जे के निहितार्थों की चेतावनी दी। वह तिब्बती जनता के लिए लड़ाई लड़ने वाले पहले व्यक्ति थे। उन्होंने 1949 में लंदन में एक

प्रेस कॉन्फ्रेंस में तिब्बत पर चीनी कब्जे को एक 'शिशु वध' बताया था।

तिब्बत पर पहले अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन 30–31 मार्च 1959 को कलकत्ता में श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में हुआ। एक साल बाद 1960 में तिब्बत पर एफ्रो–एशियाई सम्मेलन और एशिया एवं अफ्रीका में उपनिवेशवाद के खिलाफ सम्मेलन का आयोजन श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा किया गया, जिसका उद्देश्य तिब्बत की जनता के आंदोलन के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग जुटाना और उसे अभिव्यक्त करना था। इस सम्मेलन के माध्यम से भारत में 19 देशों की प्रख्यात राजनीतिक हस्तियों और मानवाधिकार आंदोलनकारियों का जमावड़ा हुआ।

इसके बाद से ही तिब्बत आंदोलन के लिए अंतरराष्ट्रीय समर्थन बढ़ने लगा, जिसकी हमें जरूरत थी। हालांकि, सबसे महत्वपूर्ण कारक था भारतीय राजनीतिक वर्ग का समर्थन जो हमें लगता है कि हमारे फिर से स्वाधीनता हासिल करने के लिए सबसे जरूरी है।

अगले पेजों में तिब्बत के मसले पर ज्ञानवर्धक अंतर्दृष्टि मिलती हैः खासकर भारतीय नजरिए से जैसा देखा जाता है। यहां जो विचार दिए गए हैं वे खासकर तिब्बत पर चीनी आक्रमण के समय प्रख्यात भारतीय नेताओं द्वारा व्यक्त किए गए थे। तिब्बत पर चीनी कब्जे का भारत के लिए क्या निहितार्थ है? यह समझने के लिए इन विचारों का जबर्दस्त महत्व है, खासकर भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए। इसलिए इसे मौजूदा भारतीय नेताओं, नीति नियंताओं और आम जनता की जानकारी में निश्चित रूप से लाया जाना चाहिए।

तेम्पा छेरिंग
सचिव, अंतरराष्ट्रीय एवं सूचना संबंध विभाग
केंद्रीय तिब्बती प्रशासन
हिमाचल प्रदेश (भारत)
10 फरवरी, 1998

विषय सूची

1. सी० राजगोपालाचारी (भारत के अंतिम गवर्नर जनरल) – तिब्बत में बर्बर साम्राज्यवाद — 11

2. डा० राजेन्द्र प्रसाद के तिब्बत पर विचार (भारत के पहले राष्ट्रपति) – पटना में विशाल जन सभा को राजेन्द्रबाबू के भाषण के अंश 24 अक्तूबर, 1962 — 12

3. पंडित जवाहर लाल नेहरु के तिब्बत पर विचार (भारत के पहले प्रधानमन्त्री) – 7 दिसम्बर, 1950 को लोकसभा में संबोधन – 27 अप्रैल, 1959 को लोकसभा में बयान – 24 मई, 1964 को लिखा उनका अंतिम पत्र — 14

4. सरदार वल्लभभाई पटेल (भारत के पहले उप–प्रधानमन्त्री) – तिब्बत पर – पंडित नेहरु के नाम पत्र नई दिल्ली, नवम्बर, 1950 — 16

5. डा० राममनोहर लोहिया के तिब्बत पर विचार (भारत के प्रख्यात समाजवादी नेता) – तिब्बत पर चीनी हमला, अक्टूबर 1950 – चीन का तिब्बत पर दूसरा आक्रमण: अप्रैल 1959 — 23

6. डॉ० भीमराव अम्बेडकर के तिब्बत पर विचार (भारतीय संविधान के जनक) – 1954, राज्य सभा दस्तावेज — 28

7. लोकनायक जय प्रकाश नारायण के तिब्बत पर विचार – पटना से 27 मार्च 1959 को दिया गया बयान — 30

– 10 जुलाई, 1959 को नई दिल्ली के सप्रू हाउस में विश्व मामलों की भारतीय परिषद के समक्ष भाषण

8. आचार्य जे०बी० कृपालानी के तिब्बत पर विचार 37
– लोकसभा : 8 मई, 1959
– एक राष्ट्र से जबरन व्याभिचार/रेप :
– उसी वर्ष, मैंने फिर कहा था कि :

9. पंडित दीनदयाल उपाध्याय के तिब्बत पर विचार 41
– तिब्बत की स्वतंत्रता में भारत का योगदान–27 अप्रैल, 1959

10. ज्ञानी ज़ैल सिंह के तिब्बत पर विचार 43
(भारत के पूर्व राष्ट्रपति)
– तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में दिया गया भाषण

11. अटल बिहारी वाजपेयी के तिब्बत पर विचार 45
(सांसद सदस्य एवं भारतीय जनता पार्टी के नेता)
– तिब्बत की आजादी
– तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार कर भूल की लोकसभा : 8 मई 1959
– भारत की तिब्बत नीति – लोकसभा : 4 सितंबर 1959
– भारत की भावना – लोकसभा : 17 मार्च 1960
– तिब्बत के मसले पर संयुक्त राष्ट्र में भारत की स्थिति; 22 नवंबर, 1960, लोकसभा

12. एस निजालिंगप्पा के तिब्बत पर विचार 58
(भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष और कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री)
– तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिया गया उद्घाटन भाषण

13. रबि रे के तिब्बत पर विचार 62
(लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष)
– तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिया गया भाषण

14. जॉर्ज फर्नांडीज के तिब्बत पर विचार 66
(संसद सदस्य और समता पार्टी के नेता)
– तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिया गया भाषण

15. लालकृष्ण आडवाणी के तिब्बत पर विचार 77
(भारत के पूर्व उप प्रधानमंत्री)
तिब्बत समर्थक समूहों के छठे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण
(सूरजकुंड, हरियाणा, शुक्रवार, 5 नवंबर, 2010)

16. श्री रफ़ीक ज़कारिया के तिब्बत पर विचार 81
भारतीय प्रतिनिधि का 1965 में सं. राष्ट्र की आम सभा में तिब्बत के प्रश्न पर दिया गया भाषण

17. प्रारम्भिक इतिहास 87

18. मंगोल प्रभाव 87

19. चौदहवीं से बीसवीं शती तक तिब्बत के विदेश सम्बन्ध 88

20. तिब्बत सरकार वचन बद्ध है कि बिना ब्रिटिश सरकार की पूर्व सहमति के 91

21. बींसवी शती में तिब्बत के विदेश सम्बन्ध 93

तिब्बत और पड़ोसी देश

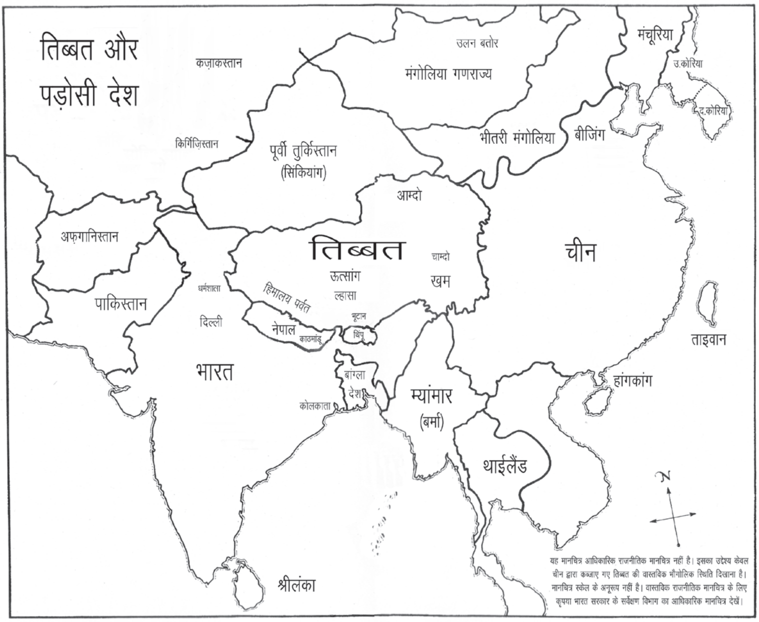

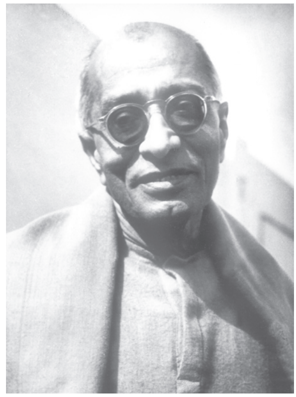

सी० राजगोपालाचारी

(भारत के अंतिम गवर्नर जनरल)

तिब्बत में बर्बर साम्राज्यवादः

तिब्बत का मुद्‌दा तिब्बत की संप्रभुता के रूप में विधिवादी अन्वेषण नहीं है, बल्कि मानवाधिकार का प्रश्न है जिसका निर्णय न्याय और मानवता के स्तर पर होना चाहिए न कि किसी कानूनी पहेली के आधार पर।

परम पावन दलाई लामा ने अपने संदेश में चीजों को बहुत स्पष्ट और सारगर्भित कर दिया है कि किस तरह कानूनी आधार पर भी इसमें कोई दो राय नहीं है कि किसी भी राष्ट्रीयता से जुड़े होने की बात को नजरअंदाज करते हुए तिब्बतियों को स्वयं शासन करने का अधिकार मिलना चाहिए। तिब्बत पर हमला जिसके कारण परम पावन दलाई लामा को भारतीय क्षेत्र में शरण लेना पड़ा, बर्बर साम्राज्यवाद है। इसलिए इस मसले पर कोई दूसरी राय नही हो सकती। सभी भारतीय यह चाहते हैं कि तिब्बत को चीन के नियंत्रण से छुटकारा दिलाया जाए।

डा० राजेन्द्र प्रसाद

(भारत के पहले राष्ट्रपति)

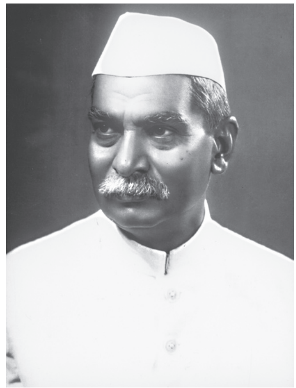

पटना में विशाल जन सभा को राजेन्द्रबाबू के भाषण के अंश

24 अक्तूबर, 1962

आज़ादी सबसे पवित्र वरदान है– इसे हर ढंग से सुरक्षित रखा जाना चाहिए– हिंसा या अहिंसा से। इसलिए तिब्बत को चीन के लोह–पाश से आजाद करवा कर तिब्बततियों को सौंपना होगा। सभी क्षेत्रों में हमारी सैकड़ों सैन्य–चौकियां हैं, यदि चीन ने धोखे से उनमें से कुछ पर कब्जा भी किया है तो हमें घबराना नहीं है। हमारे सैनिक बहादुरी में प्रसिद्ध हैं, वे जल्दी चीनियों को खदेड़ देंगे।

आवश्यक हो गया है कि हम तिब्बत में जाकर शत्रु को भगाएं और तिब्बत को हर हालत में आज़ाद कराएं। जब चीन ने हमें धोखा दे ही दिया है तो हमारा कर्तव्य बनता है कि हम तिब्बत को आज़ाद कराएं, तिब्बत वापिस तिब्बतियों के हवाले करें, आप सबको इस पावन काम के लिए सरकार के हाथ मजबूत करने होंगे– दान देकर, फौज में भर्ती होकर! हमने अहिंसा से दुनिया की सबसे बड़ी ताकत को अपने देश से भगाया, अपनी आज़ादी फिर से पाई। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन से जो आज़ादी हमने पाई। उसकी सुरक्षा के लिए हमें हिंसा भी अपनानी पड़ी तो हम पीछे नहीं हटेंगे। आज़ादी को कैसे बचाना है यह समय इस बात पर सोच विचार का नहीं है, यह समय है शत्रु पर करारा हल्ला बोलने का। यदि कुछ चीनी हमारे क्षेत्रों में घुसपैठ करते हुए दिख जाते हैं, हमें देखना होगा कि उन्हें खाने को कुछ न मिले, सिर छुपाने को कुछ न मिले, मरणोपरान्त उन्हें भूमि का छोटा सा टुकड़ा भी न मिले दफनाए जाने को।

जब हम हिन्दी–चीनी–भाई के नारे लगा रहे थे, चीन के साथ भावविभोर हो रहे थे चीन क्रूर धोखे से हमारे क्षेत्र निगल रहा था, और जब हमने उसे अपने क्षेत्रों से भगाने के कदम उठाए तो उसकी धूर्तता देखो, वो चिल्लाया कि भारत ने उसपर, उसके क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया है............

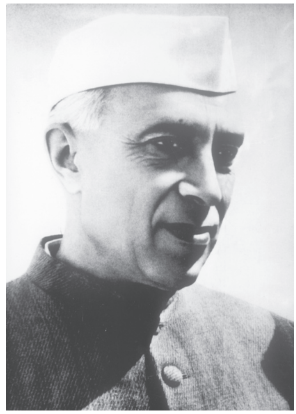

पंडित जवाहर लाल नेहरु

(भारत के पहले प्रधानमन्त्री)

लोकसभा : 7 दिसंबर 1950

किसी भी राष्ट्र के लिए किसी भी ऐसे क्षेत्र पर अपने अधिपत्य या प्रभुत्व के बारे में बोलना अनुचित है जो उसके राष्ट्र से बाहर हो। अभिप्राय यह कि क्योंकि, तिब्बत चीन के समान नही है, इसलिए किसी कानूनी या संवैधानिक तर्क–विर्तक के बजाय अंतिम रूप में तिब्बत के लागों की इच्छा को ही प्रधान मानना होगा। मैं समझता हूँ कि यह एक तर्कसंगत बात है। तिब्बतवासी अपने अधिकारों पर दृढता से खड़े रह पाते हैं या नहीं, यह अलग बात है। हम भी इतने शक्तिशाली हैं या कोई अन्य राष्ट्र ही, जो देखे कि तिब्बत के साथ न्याय हो, यह भी एक अलग बात है। परन्तु यह कहना ठीक है, उचित भी तथा चीनी सरकार को यह बताने में मुझे कोई कठिनाई भी नहीं कि उसके पास चाहे तिब्बत पर प्रभुत्व या अधिपत्य के अधिकार है या नहीं है, परन्तु जिन सिद्धान्तों को मैं सर्वोच्च मानता हू उनके अनुसार तिब्बत के बारे में आखिर आवाज़ तिब्बत के लोगों की ही होनी चाहिए और किसी की नहीं।

27 अप्रैल, 1959 को लोकसभा में बयान

दो या तीन साल पूर्व जब चाउ एन लाई भारत आए तो वह तिब्बत पर पर्याप्त समय तक चर्चा करने के लिए अच्छी तरह तैयार थे। हम लोगों ने इस मसले पर स्पष्ट और पूरी बात की। उन्होंने मुझसे कहा कि हालांकि तिब्बत लंबे समय तक चीन का हिस्सा रहा है लेकिन अब वह तिब्बत को चीन का एक हिस्सा नहीं मानते। तिब्बत के लोग चीन के लोगों से अलग हैं। इसलिए वह तिब्बत को एक स्वायत्तशासी क्षेत्र मानते

हैं जिसे स्वायत्तता मिलनी चाहिए। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि किसी के लिए भी यह कल्पना करना निरर्थक है कि चीन तिब्बत पर साम्यवाद थोपने जा रहा है।

पंडित जवाहरलाल नेहरु, 24 मई, 1964 को लिखा उनका अंतिम पत्र

देहरादून 24 मई, 1964

मेरे प्रिय गोपाल सिंह,

आपका 20 मई का पत्र प्राप्त हुआ। मुझे यह समझ में नहीं आ रहा कि वर्तमान परिस्थितियों मे हम तिब्बत के लिए क्या कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र में तिब्बत पर प्रस्ताव पारित करवाने का बहुत लाभ नहीं है क्योंकि चीन उसमें शामिल नहीं है। तिब्बत में जो कुछ हुआ हम उससे उदासीन नहीं हैं लेकिन इसके बारे में कुछ प्रभावी कदम उठाने में हम असमर्थ हैं।

आपका शुभचिंतक (जवाहरलाल नेहरु)

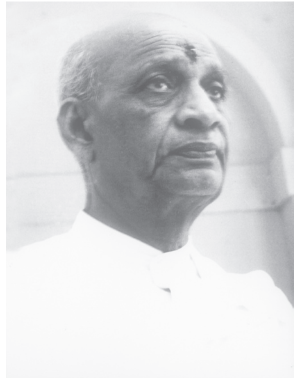

सरदार वल्लभभाई पटेल

(भारत के पहले उप–प्रधानमन्त्री)

तिब्बत पर – पंडित नेहरु के नाम पत्र

नई दिल्ली, नवम्बर, 1950

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

जिस दिन मैं अहमदाबाद से लौटा उसी दिन मुझे केवल पंद्रह मिनट के नोटिस पर मंत्रिमंडल की बैठक में भाग लेना पड़ा। इसी कारण से उस दिन मैं अपने सभी दस्तावेज़ नहीं पढ़ सका, जिसके लिए मुझे बहुत खेद है। मैं तिब्बत की समस्या पर बहुत गंभीरता से सोचता रहा हूं। मैं चाहता हूं कि इस संबंध में मैं अपने विचारों की जानकारी आपको भी दूं।

मैंने पीकिंग स्थित भारतीय राजदूत के माध्यम से अपने देश के विदेश मंत्री और चीनी सरकार के बीच हुए पत्र व्यवहार की पूरी–पूरी जान कारी प्राप्त की है। मैंने बहुत ध्यानपूर्वक बिना किसी पक्षपात के इस पत्र–व्यवहार को पढ़ा और बहुत दुख के साथ मुझे यह कहना पड़ रहा है कि इस अध्ययन के दौरान कोई भी पक्ष मुझे ठीक प्रतीत नहीं हुआ। चीनी सरकार ने अपने शांतिपूर्ण प्रयासोंके नाम पर लगातार हमें धोखा दिया है। मेरा अपना विचार यह है कि ऐसे संकट के समय में चीनी सरकार तिब्बत के मामले को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की अपनी तथाकथित इच्छा के प्रति हमारे राजदूत के मन में विश्वास की एक झूठी भावना उत्पन्न करने में सफल हुई है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस समय चीनी सरकार उपरोक्त पत्र–व्यवहार में लगी हुई थी ठीक उसी समय वह तिब्बत पर अधिकार करने की योजनाएं भी बना रही थी। मेरे विचार से चीनियों की सभी कार्यवाहियां एक प्रकार से भारत के प्रति चीनी सरकार द्वारा रचा गया एक षडयंत्र है। इस पर भी दुख की बात यह है कि तिब्बती हम पर

विश्वास रखते है। उन्होंने अपने मार्गदर्शन के लिए हमें ही चुना है और हम उन्हें चीनी कूटनीति के शिकंजे से मुक्त कराने में असफल रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हम दलाई लामा को स्वतंत्र कराने में सफल नहीं हो सकेंगे। हमारे राजदूत चीनी नीतियों और कार्यवाहियों की पुष्टि बड़ी कठिनाइयों के बाद कर सके हैं। जैसा कि विदेश मंत्रालय ने अपने एक तार में कहा है कि उन्होंने हमारी ओर से चीनी सरकार के सम्मुख जो प्रतिनिधित्व किया है, उसमें दृढ़ता का अभाव तथा अनावश्यक क्षमा–याचना की भावना निहित रही है।

कोई बुद्धिमान व्यक्ति तिब्बत में ब्रिटिश–अमरीकी षडयंत्र से चीन को तथाकथित खतरा होने पर विश्वास करे, इस बात की कल्पना भी असंभव है। और क्योंकि चीनी लोग इसमें विश्वास रखते हैं इसीलिए उन्होंने यह मान लिया कि ब्रिटिश अमरीकी कूटनीतिक व्यूह रचना में हमारा भी हाथ रहा है। उनकी इस भावना से पता चलता है कि यद्यपि हमने चीन को सदा अपना मित्र माना है, किंतु फिर भी चीनी हमें अपना मित्र नहीं समझ सके।

साम्यवादियों की इस मानसिकता कि जो उनके साथ नहीं वह उनका विरोधी है–हमें ध्यान देना चाहिए। पिछले अनेक महीनों से रूसी खेमे से बाहर भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसने चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता दिए जाने का बार–बार समर्थन किया है। हमने चीन को संतुष्ट करने के लिए हर संभव प्रयास किया है। हमने ब्रिटेन और अमरीका से पत्र–व्यवहार करते समय और संयुक्त राष्ट्र संघ में वाद–विवाद में भाग लेते समय सदा चीन की न्यायपूर्ण मांगों और उचित विचारों का समर्थन किया है। फिर भी चीन को हमारी निःस्वार्स्थता पर यकीन नहीं होसका है। वह अब भी हमें संदेह की दृष्टि से देखता है। इसी कारण से भारत चीन के बीच संबंधों के लिए संदेहों और शत्रुता का मिला–जुला वातावरण तैयार हो गया है। मेरे विचार से चीन को अपनी सद्भावना और मैत्री की इच्छा का विश्वास दिलाने के लिए इससे अधिक हम कुछ नहीं कर सकते। आजकल पीकिंग में जो भारतीय राजदूत हैं वे मैत्रीपूर्ण संबंधों के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में पूर्णतः समर्थ हैं। किंतु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह भी चीनियों की मनोदशा बदलने में सफल नहीं हो पा रहे। चीन से प्राप्त अंतिम तार भी चीन की अमैत्रीपूर्ण भावनाओं का सूचक है जिसके द्वारा चीन ने न केवल तिब्बत में चीनी सेना के प्रवेश पर भारत

द्वारा किए गए लगातार विरोध से मुक्ति पा ली है, बल्कि साथ ही यह भी संकेत दिया है कि हमारे विचार और व्यवहार बाह्य शक्तियों के दबाव से ही निर्धारित होते हैं। चीन के इन विचारों से ऐसा नहीं लगता कि ये भारत के किसी मित्र–देश के विचार हैं। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है ये विचार एक संभावित शत्रु देश के ही हैं।

ऐसी पृष्ठभूमि में हमें ध्यान देना होगा कि तिब्बत के लुप्त हो जाने और इसके साथ ही चीन द्वारा हमारी सीमाओं तक विस्तार कर लिए जाने के परिणामस्वरूप हमें किस नई स्थिति का सामना करना है। अब तक के इतिहास में हमने शायद ही कभी अपनी उत्तरी–पूर्वी सीमा के विषय में चिंता की होगी। उत्तर दिशा से आनेवाले किसी भी खतरे के लिए हिमालय पर्वत एक अभेद्य दीवार के रूप में खड़ा रहा है। अब तक हमारे पड़ोस में तिब्बत के रूप में एक ऐसा मित्र देश था जिसने कभी–भी हमारे लिए कोई परेशानी पैदा नहीं की। चीनी पहले विभाजित थे और उनकी अपनी निजी समस्याएं थीं और उन्होंने कभी भी हमें हमारी सीमाओं पर परेशान नहीं किया था। 1914 में हमने तिब्बत से एक समझौता किया था जिसका चीन ने कभी भी समर्थन नहीं किया। हम यही चाहते थे कि इस द्विपक्षीय समझौते पर चीन भी अपने हस्ताक्षर कर दे। तिब्बत में चीनी सेनाएं प्रविष्ट हो जाने के साथ ही ऐसा प्रतीत होता है कि चीनी सरकार शीघ्र ही उन सभी प्रतिज्ञाओं को भंग कर देगी जो तिब्बत ने हमारे साथ की है। इसके साथ ही भारत और तिब्बत के बीच हुए वे सभी वाणिज्यिक और सीमा संबंधी समझौते भी खटाई में पड़ जाएंगे जिनके आधार पर हम पिछली आधी–शताब्दी से व्यहार करते आ रहे हैं। चीन अब विभाजित नहीं है। अब वह एक संगठित और शक्तिशाली देश है। हिमालय के साथ–साथ हमारी सीमा के उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी भाग में ऐसी आबादी बसी हुई है जो सांस्कृतिक तथा चारित्रिक दृष्टि से तिब्बतियों और मंगोलियनों से भिन्न नहीं है। सीमांत प्रदेशों की अनिश्चित स्थिति और हमारी आबादी के एक भाग का तिब्बत या चीन से साम्य, दो ऐसी विशेषताएं हैं, जिनमें वे सभी आवश्यक तत्व विद्यमान हैं जो चीन और हमारे बीच संबंध बिगाड़ने के लिए पर्याप्त हैं। हाल ही के कुछ कटु अनुभवों ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि साम्यवाद साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक ढाल के रूप में प्रयोग नहीं हो सकता है और एक साम्यवादी एक साम्राज्यवादी के समान ही अच्छा या बुरा सिद्ध हो सकता है। साम्यवादी चीन का उद्देश्य न केवल हमारी ओर के हिमालय की ढलानों पर अधिकार करना है, बल्कि उसका

लक्ष्य असम राज्य के कुछ भागों पर अधिकार करना भी है। बर्मा के संबंध में भी उसकी ठीक इसी प्रकार की महत्वाकांक्षाएं हैं। बर्मा के साथ एक कठिनाई यह है कि इसके पास कोई मैक मोहन रेखा नहीं है, जिसके आधार पर किसी समझौते जैसी कोई बात उठाई जा सके। चीनी साम्राज्यवादी साम्यवाद पश्चिमी शक्तियों के साम्राज्यवाद या विस्तारवाद से भिन्न है। साम्यवाद ने विचारधारा का आवरण भी ओढ़ रखा है जो इसे दस गुना खतरनाक बना देता है। इस विचारधारा संबंधी विस्तारवाद के आवरण में अनेक जातीय, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक दावे निहित हैं। इसीलिए उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी दिशा की ओर से होने वाले खतरे साम्यवादी तथा साम्राज्यवादी दोनों ही हैं। एक ओर पश्चिम तथा उत्तर–पश्चिम में होने वाले खतरे ज्यों के त्यों हैं तो दूसरी ओर उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम में हमारे लिए नए खतरे पैदा हो रहे हैं। इस प्रकार कई शताब्दियों बाद पहली बार भारतीय रक्षा विभाग को एक ही समय में दो–दो मोर्चे की रक्षा करनी पड़ी है। अभी तक हमारे रक्षा प्रयास पाकिस्तान के संबंध में ही होते थे, लेकिन अब हमें उत्तर और उत्तर–पूर्व में साम्यवादी चीन पर भी ध्यान देना होगा–उस साम्यवादी चीन पर जिसके कुछ निश्चित लक्ष्य तथा महत्कांक्षाएं हैं और जो किसी भी हालत में भारत के प्रति मैत्रीपूर्ण रवैया अपनाने को तैयार नहीं है।

अब इन संभावित संकटों से ग्रस्त सीमांत प्रदेश के विषय में राजनीतिक दृष्टि से भी विचार कर लिया जाए। हमारे उत्तर और उत्तर–पूर्व में नेपाल, भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग तथा असम राज्य हैं। बाकी देश से संपर्क की दृष्टि से इन क्षेत्रों की दशा अच्छी नहीं है। यहां लगातार सुरक्षा व्यवस्था का भी अभाव है। यहां पुलिस प्रबंध भी सीमित है।

इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों की गौण पुलिस सीमा चौकियों पर सिपाहियों की संख्या भी पर्याप्त नहीं है। इस ओर ऐसे साधनों का सर्वथा अभाव है जिनके द्वारा हम इन क्षेत्रों से जुड़े रह सकें। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में भारत के प्रति भक्ति या निष्ठा बहुत कम देखने को मिलती है। यहां तक कि दार्जिलिंग और कलिंपोंग क्षेत्र भी मंगोलियाई समर्थक विचारों से मुक्त नहीं है। गत तीन वर्षो। में हम नागाओं और असम की पर्वतीय जातियों के संबंध में कोई भी उचित कदम नहीं उठा सके हैं। किंतु उनके प्रयास भारत या भारतीयों के प्रति किसी भी तरह से मैत्रीपूर्ण नहीं थे। कुछ समय पूर्व सिक्किम में राजनीतिक उथल–पुथल

मची हुई थी। इसीलिए यह स्वाभाविक ही है कि वहां धीरे–धीरे असंतोष व्याप्त होता जा रहा है। भूटान यद्यपि शांत ही है, लेकिन तिब्बतियों से इसका निकट संबंध ही इस क्षेत्र के लिए एक बड़ी मुसीबत सिद्ध होगा। नेपाल में दुर्बल अल्पतंत्रीय शासन स्थापित है जो लगभग पूरी तरह से शक्ति पर ही आधारित है। इस समय इस व्यवस्था को जनता के एक विक्षुब्ध वर्ग और साथ ही आधुनिक युग के जागृत विचारों से संघर्ष करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में हमारी जनता को नए संकट के प्रति सावधान करना और उसे रक्षात्मक दृष्टि से सक्षम बनाना बहुत कठिन काम है और इसकठिनाई पर केवल विवेकपूर्ण स्थिरता विश्वास तथा स्पष्ट नीतियों द्वारा भी नियंत्रण किया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि चीन और उसका मार्ग–दर्शक रूप दोनों ही अपनी विचारधारा तथा अपनी महत्वकांक्षाओं की खातिर इन दुर्बल क्षेत्रों का शोषण कर सकने का कोई भी अवसर नहीं खोएंगे। मेरे विचार में ऐसी स्थिति में हमे पूर्णतः निश्चिंत नहीं हो जाना चाहिए। हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि हमारे उद्देश्य क्या हैं और हमें उन्हें कैसे प्राप्त करना है। अपने उद्देश्यों के निर्धारण में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट तथा अनिश्चिसता हमें कमजोर बना सकती है और हमारे उन खतरों को बढ़ सकती है, जो प्रमाणिक हैं।

इन बाहरी संकटों के साथ–साथ हमें कई गंभीर आंतरिक संकटों का सामना भी करना है। मैं इंगर से पहले ही कह चुका हूं कि वे विदेश मंत्री को इन मामलों के विषय में खुफिया विभाग की रिपोर्ट की एक प्रति भेज दें। भारत के साम्यवादी दल को विदेशों के साम्यवादियों से संपर्क बनाए रखने तथा उनसे अस्त्र–शस्त्र, साहित्य आदि प्राप्त करने में कठिनाई होती रही है। उन्हें पूर्व में बर्मी तथा पाकिस्तान के सीमांतों पर भी निर्भर रहना पड़ता था। लेकिन अब उनकी पहुंच सरलता से चीनी साम्यवादियों और उनके द्वारा अन्य विदेशी साम्यवादियों तक हो सकेगी। जासूसों, गद्दारों तथा साम्यवादियों की घुसपैठ भी अब सरल हो जाएगी। केवल तेलंगाना, वारांगल के साम्यवादियों की समस्या से निबटने की अपेक्षा हमें अपने उत्तरी और उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में व्याप्त साम्यवादी खतरों पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि इन क्षेत्रों के साम्यवादी आसानी से चीनी साम्यवादियों के शस्त्र–भंडार से प्राप्त अस्त्र–शस्त्र और युद्ध सामग्री पर निर्भर रह सकते हैं। इस प्रकार से सभी परिस्थितियां मिलकर कई गंभीर समस्याओं को जन्म देती हैं, जिनके संबंध में हमें जल्दी से जल्दी कोई निर्णय ले लेना होगा, ताकि जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं, हम अपनी नीति के संबंध

में उद्देश्य और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने की विधियां और साधन निर्धारित कर सकें। ऐसा करके ही हम ऐसे कदम उठा सकेंगे जो न केवल हमारे लिए रक्षात्मक दृष्टि से उचित होंगे, बल्कि हमारी आंतरिक सुरक्षा के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। हमको इन दुर्बल क्षेत्रों में अनेक उन प्रशासनिक तथा राजनीतिक समस्याओं का सामना करना है जिनका मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूं।

6. मेरे लिए इन समस्याओं का विवरण देना असंभव है फिर भी मैं नीचे उन समस्याओं के विषय में बता रहा हूं जिनको मेरे विचार से जल्दी से जल्दी सुलझा लेना चाहिए और जिनके आधार पर हमें अपनी प्रशासनिक तथा सैनिक नीतियां निर्धारित तथा लागू करनी है :–

ए – भारत की आंतरिक सुरक्षा तथा सीमांत प्रदेशों में संभावित चीनी खतरे का भारत के सैन्य–विभाग तथा खुफिया विभाग द्वारा मूल्यांकन।

बी – हमारी सैनिक स्थिति का मूल्यांकन और फिर सेना का उस सीमा तक पुनर्प्रबंध और जहां तक आवश्यक हो, विशेषतः उन भागों और क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए कदम उठाए जाएं जो विवाद का केंद्र बन सकते हैं।

सी – अपनी सैनिक शक्ति का मूल्यांकन और फिर यदि आवश्यक हो तो इन नए खतरों को देखते हुए अपनी सैनिक मोर्चाबंदी का पुर्नप्रबंध।

डी – अपनी सुरक्षात्मक– आवश्यकताओं पर दीर्घकालीन विचार। मेरा अपना विचार यह है कि यदि हम अपने अस्त्र–शस्त्र और अन्य युद्ध सामग्री के विषय में विश्वस्त नहीं होंगे तो हमारी रक्षा व्यवस्था लगातार दुर्बल होती चली जाएगी और हम अपनी पश्चिमी सीमा और उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी सीमा पर उत्पन्न दोहरे खतरों और समस्याओं को नहीं सुलझा पाएंगे।

ई – संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश का प्रश्न। चीन ने हमारे साथ जो विश्वासघात किया और जिस प्रकार से वह तिब्बत का मामला सुलझाने का प्रयास कर रहा है, उसे देखते हुए मुझे संदेह है कि हम भविष्य में भी चीन के दावों का समर्थन करते रह पाएंगे। चीन द्वारा कोरिया–युद्ध में सक्रिय भाग लिए जाने के कारण ही वास्तव में चीन के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ में न्याय न हो पाने की संभावना है। हमें इस प्रश्न पर भी अपना रवैया निश्चित करना है।

एफ – अपने उत्तरी तथा उत्तर–पूर्वी सीमांतों को सशक्त बनाने के लिए उठाए जा सकने वाले राजनैतिक तथा प्रशासनिक प्रयास। इस क्षेत्र के अंतर्गत वह सारा सीमा क्षेत्र आता है जो नेपाल, भूटान, सिक्किम, दार्जिलिंग तथा असम के जातीय क्षेत्र से संबंधित है।

जी – सीमा क्षेत्रों और सीमाओं के निकट स्थित राज्यों, जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और असम आदि में आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन।

एच – इन क्षेत्रों में और यहां स्थितचौकियों में संचार साधनों, सड़कों, रेल, वायुयान और वायरलेस संबंधी सुविधाओं में सुधार।

आई – सीमांत चौकियों पर पुलिस तथा खुफिया प्रबंध।

जे – ल्हासा में स्थापित हमारे कार्यालय तथा ग्यान्त्से और यालुंग में स्थित हमारी व्यापारिक चौकियों व तिब्बत में व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा के लिए स्थापित हमारी सेनाओं का भविष्य।

के – मैकमोहन रेखा के संबंध में नीति–निर्धारण।

7. ये कुछ प्रश्न हैं, जो मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न हुए हैं। यह संभव है कि इन मामलों पर विचार–विमर्श द्वारा चीन, रूस, अमरीका, ब्रिटेन और बर्मा से संबंधों के विषय में अधिक बड़े प्रश्न पैदा हो जाएं। इनमें से कुछ प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं, जैसे हमें चीन के साथ सौदेबाजी में बर्मा की स्थिति मजबूत करने के लिए बर्मा के निकट आना चाहिए या नहीं।

मैं इस संभावना से इनकार नहीं करता कि हम पर दबाव डालने से पूर्व चीन बर्मा पर दबाव डाल सकता है। बर्मा का सीमांत अनिश्चित है जबकि चीन के सीमा संबंधी दावे अधिक पुष्ट तथा ठोस हैं। ऐसी स्थिति में बर्मा चीन के लिए एक सरल समस्या होने के कारण चीन के ध्यान का केंद्र बन सकता है।

मैं सुझाव देता हूं कि हम जल्द ही मिलें। इन समस्याओं पर सामान्य रूप से विचार–विमर्श करें। ऐसे कदम, जो हम जल्दी से जल्दी उठाना आवश्यक समझते हैं, उनका निर्धारण करें तथा अन्य समस्याओं तथा उनके समाधान के मूल्यांकन की भी उचित व्यवस्था करें।

तुम्हारा ही (बल्लभभाई पटेल)

डा० राममनोहर लोहिया

(भारत के प्रख्यात समाजवादी नेता)

तिब्बत पर चीनी हमला, अक्टूबर 1950

चीन ने तिब्बत पर हमला कर दिया है, जिसका केवल एक मतलब हो सकता है कि एक शिशु को मसल डालने के लिए राक्षस ने कदम बढ़ा लिया है। तिब्बत पर आक्रमण को यह कहना कि, वह 30 लाख लोगों को मुक्त करने का प्रयास हैं, भाषा का अर्थ ही मिटा देने के बराबर है और सारे मानवीय संसर्ग और बोध को खत्म कर देना है। इससे आजादी और गुलामी, वीरता और कायरता, निष्ठा और द्रोह, सत्य और असत्य समानार्थक हो जाएंगे। चीन की जनता के प्रति हमारी दोस्ती और आदर कभी कम नहीं होगा किंतु हमें अपनी धारणा व्यक्त कर देनी चाहिए कि इस आक्रमण और शिशु हत्या का कलंक चीन की वर्तमान सरकार कभी नहीं धो सकेगी।

चीन का यह दावा कि वह तिब्बत में अपनी पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित करना चाहता है सर्वथा अनिष्टकर है। इस आधार पर तो प्रत्येक राष्ट्र संसार भर में अपनी सीमाओं को सुरक्षित करने का प्रयास करेगा। इसके अलावा, चीन की तुलना में हिन्दुस्तान के साथ तिब्बत के संबंध अधिक गहरे हैं। मैं सामरिक संबंधो की बात नहीं करता लेकिन विशेषकर पश्चिमी तिब्बत से भाषा, व्यापार और संस्कृति के संबंधो मे यह देखा जा सकता है। तिब्बत में घुसकर चीन की वर्तमान सरकार ने न केवल अंतरराष्ट्रीय सदाचार की अवहेलना की है, बल्कि हिन्दुस्तान के हितों पर भी आघात किया है।

अगर चीन सरकार का रूख संप्रभुता के किसी बिल्कुल अमान्य किंतु तकनीकी और संदेहास्पद मुद्दे पर आधारित है, तो जनमत संग्रह के द्वारा तिब्बत की जनता की इच्छा मालूम की जा सकती है।

अच्छा होगा कि भारत सरकार चीन सरकार को अपनी फौंजें हटा लेने की सलाह दे और दोनों के बीच सच्ची दोस्ती को दृष्टिगत रखते हुए भारत उस तरह के जनमत–संग्रह की व्यवस्था करने का प्रस्ताव रखे।

चीन का तिब्बत पर दूसरा आक्रमणः अप्रैल 1959

नौ साल पहले जब तिब्बत में शिशु वध हुआ था तो जहां तक मुझे याद है, आज चीन द्वारा दूसरी बार आक्रमण होने के समय जो लोग शोर–शराबा कर रहे हैं, अधिकांश उस समय खामोश थे। उस समय तो कुछ करना चाहिए था, कुछ कहना चाहिए था। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि आज कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन कुछ भी कहने से पहले लोगों को अपनी कमजोरियां जानना चाहिए। जैसे कि कहावत है, जब मोर नाच रहा हो तो उसे अपने पैरों के बारे में अच्छी तरह से मालूम होना चाहिए। विदेशी नीति का नजरिया बनाने में एक बुनियादी कमी यह होती है कि यह न्याय या अन्याय के आधर पर नहीं बनाए जाते बल्कि इससे जुड़े कई पहलुओं पर विचार किया जाता है जैसे– पार्टी का हित, व्यक्तिगत हित आदि। नौ साल पहले भारत की सरकार और कुछ हद तक भारत की जनता के भी चीन के साथ इतने दोस्ताना सम्बंध थे कि भारत का कोई भी राजनीतिक दल या नेता तिब्बत मामले पर खुलकर बोलने की हिम्मत नहीं कर पाता था। लेकिन अब स्थिति बदल गई है। दोनों सरकारों के बीच ऊपरी तौर पर तो सम्बंध अब भी बने हुए हैं लेकिन पिछले एक–डेढ़ साल से भीतर–भीतर तनाव सुलग रहा है। यही कारण है कि पहले की स्थिति में जिनकी जबान बंधी हुई थी वे भी अब तिब्बती जनता के समर्थन में गला फाड़कर चिल्ला रहे हैं।

इस प्रकार हर जगह विदेशी मामलों में जनता का नजरिया सतही रह जाता है। भारत में भी देसी सरकार और ब्रिटिश शासकों ने यह निर्धारित करने में अपना एकाधिकार बनाए रखा कि लोगों के दिमाग में कौन–सा मुद्दा छाया रहे और उसी मुद्दे से जुड़ी खबरों और सूचनाओं को बहुत ज्यादा प्रचारित किया जाता है। जल्दी ही भारत की जनता इन सतही परतों से नीचे गहराई तक जाकर यह जानने का प्रयास करेगी कि देश की भलाई किसमें है।

भारत की विदेश नीति को गुटनिरपेक्ष नीति कहा जाता है और एक अर्थ में यह गुटनिरपेक्ष है भी क्योंकि यह किसी भी एक महाशक्ति की गुलामी नहीं करता, बल्कि बारी–बारी से दोनों की सेवा करता है। पिछले

एक–डेढ़ साल से भारतीय विदेश नीति पूंजीवादी खेमे और अमेरिका की तरफ ज्यादा झुकी है, जबकि इसके पिछले चार–पांच साल में यहां की विदेश नीति का झुकाव सोवियत खेमे की तरफ था।

हालांकि यह रेखा कभी भी परिभाषित नहीं रही लेकिन पलड़ों का संतुलन थोड़ा सा कभी एक तरफ तो कभी दूसरे तरफ झुका रहा। इस परिप्रेक्ष्य में ही तिब्बती मुद्दे पर विचार करना चाहिए। किसी भी देश की विदेश नीति को निष्पक्ष, तार्किक, ठोस और जहां तक हो सके आदर्शवादी होना चाहिए। जबकि आज यह विषयनिष्ठ और भावुकतापूर्ण है। अब यह संदेह खड़ा होता है कि भारत का प्रधानमंत्री या विदेश मंत्री यदि बंगाली मूल का होता तो क्या पाकिस्तान से संघर्ष का विषय बने पूर्वी बंगाल से आने वाले शरणार्थियों की समस्या को सुलझाया जा सकता था, यदि तमिल मूल का कोई व्यक्ति इस तरह के पद पर हो तो निश्चित रूप से श्रीलंका में भारतीय मूल के लोगों की समस्या भारतीय विदेश नीति की सबसे बड़ी समस्या बन जाएगी। अब इस पद पर कश्मीरी मूल का एक व्यक्ति बैठा हुआ है तो भारत–पाकिस्तान का संघर्ष कश्मीर के ईद–गिर्द ही घूम रहा है जो आज हमारी विदेश नीति में एक मात्र सबसे बड़ी समस्या बन गई है!

हर भारतीय तिब्बत के साथ विशेष लगाव रखता है। एक तरफ मानसरोवर जैसे कारण हैं। मानसरोवर का नाम लेते ही भारतीयों के मन में एक अजीब सी शांति और खुशी का अहसास भर जाता है।

दूसरी तरफ, तिब्बत के बच्चों जैसे और निर्दोष लोग हमें सम्मोहित करते हैं। इसमें जरा भी संदेह की बात नहीं है कि तिब्बत और विशेषकर पश्चिमी तिब्बत से चीन की तुलना में सांस्कृतिक, धर्मिक और भौगोलिक रूप से भारत का ज्यादा जुड़ाव है। बहुत से लोगों को शायद यह पता न हो कि तिब्बती वर्णमाला भारतीय वर्णमाला का ही एक रूप है और तिब्बती दृष्टिकोण में जानकारी और निर्दोर्षिता का एक जिज्ञासु मिश्रण होता है। सारनाथ में एक बार एक तिब्बती बौद्ध भिक्षु ने कहा था, ''हर जगह बुरे आदमी होते हैं, लेकिन भारत में ऐसे लोग थोड़े कम हैं और तिब्बत में भी ऐसे लोग थोड़े कम हैं, यही वजह है कि बौद्ध उपदेशक और विचारक तिब्बत जरूर जाते थे।"

इस बात पर कोई दो राय नहीं हो सकती कि दलाई लामा को भारत में शरण दिया जाए। यदि सरकार इस बारे में कोई संशय रखती

है तो वह एक और शिशु वध के लिए जिम्मेदार होगी। एक आत्मसम्मान युक्त राष्ट्र को निश्चित रूप से दूसरे देशों के राजनीतिक पीड़ितों को भी संरक्षण देना चाहिए।

हमें दलाई लामा या किसी भी अन्य लामा के प्रति कोई पक्षपात नहीं करना चाहिए। आज जो लोग किसी एक के प्रति आसक्ति दर्शा रहे हैं वह शीत युद्ध से ही अमेरिका या रूस के साथ जुड़े हैं। तिब्बत और उसके लामाओं के प्रति हमारे दिमाग में एक स्वाभाविक आकर्षण होता है लेकिन इस प्रकार की भावना से हमारी इस मांग को बल मिलना चाहिए कि लामाओं की धर्मिक स्वतंत्रता बहाल की जाए न कि उनके राजनीतिक अधिकारों को।

लामाओं को मिलने वाला राजनीतिक अधिकार समाप्त होना चाहिए। कहा जा रहा है कि चीन ऐसा कर रहा है। लेकिन चीन सरकार मामले को और संगीन बनाकर ऐसा कर रही है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि स्थिति दलाई लामा के शासन से भी खराब हो गई है। समझदार लोगों का रवैया तो यह होना चाहिए था कि वह तिब्बत की जनता को जागरुक करें जिससे लामाओं के प्रति उनका रवैया बदले और लामाओं का शासन समाप्त हो।

तिब्बत पर चीन का हमला एक बर्बर कदम है। लेकिन यह बुराई साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों में अंतर्निहित है। रूस की हंगरी पर चढ़ाई, चीन का तिब्बत पर हमला और मिस्र पर ब्रिटेन–फ्रांस का हमला, सभी इसी बुराई का परिणाम हैं। खून के प्यासे दो राक्षस; साम्यवाद और पूंजीवाद मनुष्य के सीने पर बैठे हैं और मूर्ख मनुष्य इस प्रयास में लगा है कि वह किसे महत्व दे। दुनिया की कोई भी घटना विकृत हो जाती है जब हम उसे अटलांटिक या सोवियत चश्मे से देखते हैं। भारत के तथाकथित निष्पक्ष चश्मे से भी धुंधला ही दिखता है। हम हमेशा यह चाहते रहे कि अमेरिका और रूस के रवैए में बदलाव आए, आइजनहॉवर और ख्रुशेव एक–दूसरे से गले मिलें और भाई–भाई की तरह व्यवहार करें, जो कि वे वास्तव में हैं भी। अमेरिका और रूस दोनों के पास बहुत ज्यादा धन और बहुत ज्यादा हथियार है और दूसरे सभी देश धन या हथियार के लिए इन दोनों देशों पर ही निर्भर हैं। इस परिस्थिति ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति में सियारों और लोमड़ियों की जाति को बढ़ावा दिया है। दुनिया के सभी देश इन दोनों महाशक्तियों के प्रति सियार या लोमड़ी जैसा बर्ताव कर रहे हैं। कुछ सियार किसी एक या दूसरे शेर के पाले में चले गए हैं। लेकिन

कुछ लोमड़ियां भी हैं जो अपनी सुविधा के अनुसार पाला बदल कर कभी इस शेर तो कभी उस शेर के साथ खड़ी हो जाती हैं। भारत सरकार और यहां की जनता ने लोमड़ी बनने की विशेषता हासिल की है।

भारतीय विदेश नीति के बारे में एक गलत धरणा यह रही है और अभी तक बनी हुई है कि कृष्णा मेनन साम्यवाद और रूस समर्थक हैं। जबकि वह हमेशा ब्रिटेन के वफादार रहे। ब्रिटेन के विदेश और सैन्य विभाग के एजेंटों का व्यापक जाल दुनिया भर में फैला हुआ है, इन एजेंटों को हर तरह की स्वतंत्रता होती है सिवाय इसके कि उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभाव बढ़ाने में मदद करना होता है। कभी–कभी यह कार्य विदेश विभाग द्वारा नहीं बल्कि ब्रिटेन की वामपंथी पार्टियों के द्वारा कराया जाता है। इस समय तो ऐसा लग रहा है कि सिर्फ मेनन ही नहीं बल्कि उनसे बड़े लोग भी इसी लचीली ब्रिटिश नीति से बंधे हुए हैं।

चीनी आक्रमण के बारे में एक और बात पर ध्यान देना चाहिए। चीन का इस्पात उत्पादन एक करोड़ टन तक पहुंच गया है। चार या पांच साल के बाद भी भारत का इस्पात उत्पादन 60 लाख टन तक ही पहुंच पाएगा, तब तक चीन का उत्पादन 1 करोड़ 70 लाख टन तक हो जाएगा। हम भौतिक समृद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं देते, लेकिन दुनिया इसे किस नजर से देखती है। रूस का सारा पाप, यहां तक कि हंगरी पर उसकी चढ़ाई का पाप भी स्पुतनिक के विकास से धुल सकता है। दुनिया के महान विचारक और दार्शनिक भी सोवियत सरकार की तकनीकी ताकत के आगे शीश झुकाते हैं। लेकिन ताकत की पूजा करने वाले लोग निर्दयी होते हैं। भारत सरकार और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने इसका प्रदर्शन उसी तरह से किया है जैसा कि दुनिया के अन्य देशों के लोगों ने। इस प्रकार चीन के बढ़ते इस्पात उत्पादन का भी कुछ अपरिहार्य प्रभाव होगा। जब तक भारत सरकार और यहां की जनता अपने सामाजिक–आर्थिक दशाओं में क्रांतिकारी बदलाव नहीं लाती तब तक हम चीनी ड्रैगन के दांतों से नहीं बच पाएंगे। हर चीज अमेरिका–सोवियत सम्बंधों पर निर्भर करती है। यदि दोनों देश करीब नहीं आते तो तिब्बत मसले से जुड़ा तनाव बना रहेगा। निर्दोष, बच्चों जैसे भोले तिब्बतियों में पूंजीवादी दुनिया के प्रति आक्रोश बना रहेगा और साम्यवादियों से वे खीजे रहेंगे। और कुछ नहीं होगा। यदि सफेद हंगरी पर युद्ध नहीं थोपा जा सका तो निश्चित रूप से रंगीन तिब्बत पर तो यह नहीं ही थोपा जा सकेगा!

(अंग्रेजी से अनूदित)

डॉ० भीमराव अम्बेडकर

(भारतीय संविधान के जनक)

1954, राज्य सभा दस्तावेज

''हमारे प्रधानमंत्री उस पंचशील पर निर्भर करते चले आ रहे हैं, जिसे माओ ने ग्रहण किया है और जो तिब्बत पर अनाक्रमण संधि की एक धारा है। मुझे आश्चर्य है कि प्रधानमंत्री इस ''पंचशील'' को गम्भीरता पूर्वक ले रहे हैं ? महोदय आप जानते हैं कि ''पंचशील'' बौद्धधर्म का एक महत्वपूर्ण अंग है। यदि श्री माओ को ''पंचशील'' में कुछ भी आस्था होती तो वे अपने देश में बौद्धों के साथ दूसरी तरह का बर्ताव करते । राजनीति में ''पंचशील'' का कोई स्थान नहीं है। उनमें सत्य यह है कि नैतिकता परिवर्तनशील है। नैतिकता नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। आज की नैतिकता के अनुसार आप वचन का पालन कर सकते हैं, और उतने ही औचित्य के अनुसार आप कल अपने वचन का उल्लंघन भी कर सकते हैं क्योंकि कल की नैतिकता भिन्न प्रकार की होगी.....मेरा विश्वास है कि जब स्थिति गम्भीर हो जायेगी तो हमारे प्रधानमंत्री को इसका ज्ञान हो जायेगा कि मेरा कहना कितना ठीक है।'' सीटो से सम्बन्ध में बाबा साहब ने कहा, ''सीटों का काम स्वतंत्र देशों के विरुद्ध आक्रमणों को रोकना है। मैं सोचता हूं कि क्या प्रधानमंत्री इस सिद्धान्त को भी नहीं मानेंगे कि दुनिया का जो हिस्सा आकस्मिक कारणों से अब भी स्वतंत्र हैं, उसे स्वतंत्र रहने दिया जाय ? उस पर कोई भी देश आक्रमण न करे। और क्या भारत के सम्मुख आक्रमण का खतरा नहीं है ? मैं सोचता हूं कि भारत पर कभी भी आक्रमण हो सकता है। भारत किस प्रकार पाकिस्तान और दूसरे मुस्लिम देशों से घेर गया। मैं नहीं जानता कि क्या होने को है ? उधर चीन को ल्हासा (तिब्बत की राजधानी) पर अधिकार लेने

देकर प्रधानमंत्री ने एक प्रकार से चीनी लोगों को अपनी सेनाएं भारत की सीमा पर ले आने में पूरी सहायता पहुंचाई है। कोई भी विजेता, यदि कश्मीर पर अधिकार रख लेता है तो वह सीधा पठानकोट पहुंच सकता है, और मैं यकीन के साथ कहता हूं की वह शायद प्रधानमंत्री के भवन तक भी पहुंच सकता है''।

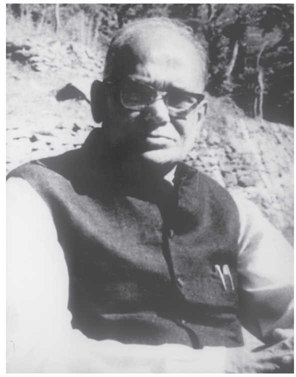

लोकनायक जय प्रकाश नारायण

पटना से 27 मार्च 1959 को दिया गया बयान

तिब्बत की स्थिति से समूचे एशिया के लोगों, विशेषकर हम भारतीयों में चिंता व्याप्त हो गई है। जब से लाल चीन ने तिब्बत को हड़पने का निर्णय लिया है, इसके बारे में हमारी नीति सच से मुंह चुराने की हो गई है। पहले हमने तिब्बत पर चीन की कार्रवाई को हमला बताया, जल्दी ही हमने उस दुर्भाग्यपूर्ण जमीन पर चीन का हक स्वीकार कर लिया। तिब्बत कभी भी चीन का हिस्सा नहीं रहा, सिवाय उन आक्रमण के दिनों के जब ल्हासा ने पीकिंग को सौगात भेजी थी। लेकिन इतिहास में एक ऐसा समय भी आया है जब पीकिंग ने तिब्बत को सौगात भेजी थी। तिब्बती लोग चीनी नस्ल के नहीं हैं और इतिहास में कभी भी इस बात का संकेत नहीं पाया गया वे चीन का हिस्सा बनना चाहते हों।

दूसरी तरफ चीन एक साम्राज्यवादी ताकत है और अपने साम्राज्यवादी अभियान के तहत उसने हमेशा तिब्बतियों के खिलाफ अभियान चलाया, जो संख्याबल में काफी कमजोर होने के कारण कभी–कभी चीन का सीमित आधिपत्य स्वीकार करने को मजबूर हुए। इस बारे में चेंग–काई–सेक और माओ–त्से–तुंग एक बराबरी में खड़े होते हैं। लेकिन इन सबसे इस तथ्य में कोई बदलाव नहीं आया है कि तिब्बती लोग किसी भी कीमत पर अपनी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखना चाहते हैं और इस मसले पर दुनिया का नैतिक समर्थन चाहते हैं।

जब चीनी साम्यवादियों ने तिब्बत पर कब्जा किया था तो उन्होंने वायदा किया था कि दलाई लामा की विशिष्ट स्थिति और उनके सरकार की स्वायत्तता बनाई रखी जाएगी। जो लोग साम्यवादी शासन के प्रकृति

को जानते हैं वे यह अच्छी तरह समझते थे कि साम्यवाद के अंतर्गत स्वायत्तता की बात करना बिल्कुल पाखंड की बात है और बस इसमें थोड़े समय लगने की ही बात थी कि चीनी तिब्बती स्वंत्रतता के ताबूत में अंतिम कील कब ठोकते हैं। वर्तमान घटनाओं से यह साबित हो रहा है कि लोगों की यह समझ कितनी सही थी।

अब सवाल यह है कि हम तिब्बतियों की मदद के लिए क्या कर सकते हैं। यह बात सही है, जैसा कि प्रधानमंत्री ने 1950 में संसद में कहा था कि हम डॉन क्विजोटे की तरह हर चीज के लिए लड़ाई नहीं कर सकते। किसी को भी यह उम्मीद नहीं है कि तिब्बत के लिए भारत चीन से लड़ाई करे। लेकिन हर खरे व्यक्ति, हर आजादी पसंद करने वाले व्यक्ति को चोर को चोर कहने के लिए तैयार रहना चाहिए। आक्रमण की गंभीर कार्रवाई को नजरअंदाज कर हम शांति नहीं ला सकते। हम चीन को तिब्बत पर कब्जा जमाने और वहां की बहादुर व शांतिपूर्ण जनता के भावनाओं का दमन करने से भौतिक रूप से तो नहीं रोक सकते, लेकिन कम से कम हम खुलकर यह बात तो कह सकते हैं कि तिब्बत पर आक्रमण हुआ है और एक ताकतवर पड़ोसी ने एक कमजोर देश की स्वतंत्रता छीन ली है। हमें साम्यवाद के चेहरे से वह नकाब फाड़ने से पीछे नहीं रहना चाहिए, जिसके तहत पंचशील के सीधे–सादे छवि के नीचे साम्राज्यवाद का जंगली चेहरा छुपाया गया है। इस समय हम तिब्बत में एक नए साम्राज्यवाद की सक्रियता देख रहे हैं जो पुराने साम्राज्यवाद से भी ज्यादा खतरनाक है क्योंकि यह एक तथाकथित क्रांतिकारी विचारधारा के बैनर के तहत आगे बढ़ रहा है। हो सकता है कि तिब्बत किसी धर्म निरपेक्ष राज्य की तुलना में धार्मिक राज्य हो और आर्थिक एवं सामाजिक रूप से थोड़ा पिछड़ा भी हो। लेकिन किसी भी देश को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी अन्य देश पर प्रगति थोपे, चाहे वह किसी भी अर्थ में हो। हर देश को चाहे व छोटा हो या बड़ा, यह अधिकार है कि वह जीने का खुद का तरीका चुने और हम सिर्फ इतना कर सकते हैं कि उसके इस अधिकार के साथ बिना किसी शंका के साथ खड़े हों।

चीन के साथ एक मित्रता के बंधन के साथ हमारा जुड़ाव सही है और मैं भी उन लोगों में से हूं जो यह चाहते हैं कि यह बंधन, मजबूत और सुरक्षित हो। लेकिन मित्रता का मतलब यह तो नहीं होता कि अपराध करने के लिए उकसाया जाए। वास्तव में सही मित्रता का मतलब होता

है (मैं समझता हूं कि कुछ चीनी कहावतों में भी इसका वर्णन होगा) कि जब मित्र गलत रास्ते पर जाए तो उसको दृढ़तापूर्वक इस बारे में बताना चाहिए। भारत महाशक्ति की राजनीति में विश्वास नहीं करता और उसके अंदर इतना साहस होना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति में सच के साथ खड़ा हो। हमारे पास खोने के लिए कुछ नहीं है। चीनी लोगों को हमसे मित्रता की उतनी ही जरूरत है जितनी कि हमें। लेकिन यदि इस मित्रता की कीमत कपट हो और गलत कार्य के लिए माफ करना हो तो हमारे अंदर यह साहस और ईमानदारी होनी चाहिए कि इस कीमत को ठुकरा सकें। तिब्बत की दुखद घटना को भुलाया नहीं जाना चाहिए।

(अंग्रेजी से अनूदित)

10 जुलाई, 1959 को नई दिल्ली के सप्रू हाउस में विश्व मामलों की भारतीय परिषद के समक्ष भाषण

मैं पहले यह बात स्पष्ट कर दूं कि तिब्बत पर मेरा नजरिया इस कारण नहीं बना है कि मै चीन का विरोधी हूं और यह चाहता हूं कि उसे नुकसान पहुंचे। तिब्बत पर मेरा नज़रिया वर्तमान परिस्थितियों के कारण बना है और मेरा यह मानना है कि जब एक मित्र गलत रास्ते पर जा रहा हो तो यह कर्तव्य होता है कि उसे दृढ़ता से इस बारे में बताया जाए। इस भाव से ही मै चीन की आलोचना कर रहा हूं। दलाई लामा तिब्बत के लोगों की वास्तविक आवाज़ हैं और वह उनकी जिस तरह से पूजा करते हैं उतनी दुनिया में किसी भी अन्य जीवित व्यक्ति की नहीं होती।

तिब्बत पर विशेष नियंत्रण के अलावा परम पावन दलाई लामा की एक अंतरराष्ट्रीय हैसियत और व्यक्तित्व है। समूचे बौद्ध दुनिया में विशेषकर मंगोलिया व स्वयं चीन में और उन सभी क्षेत्रों में जहां बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रसार हुआ है दलाई लामा को सर्वोच्च आध्यात्मिक नेता का सम्मान प्राप्त है।

मै समझता हूं कि वर्तमान परिस्थितियों के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं:–

1. दलाई लामा ने तिब्बत की आज़ादी को अपना लक्ष्य घोषित किया है।

2. उन्होंने कहा कि उनकी सरकार को 1951 के चीन–तिब्बत समझौते

पर इसलिए हस्ताक्षर करना पड़ा क्योंकि चीन की हमलावर सेना ने उनके सामने और कोई विकल्प नहीं छोड़ा और उन्होंने यह भी कहा कि समझौते में स्वायत्तता की शर्त चीन ने जबरन शामिल करवाई।

3. उन्होंने इन तथ्यों को भी उजागर किया कि तिब्बत में बडे पैमाने पर और बर्बर ढंग से तिब्बती लोगों का दमन किया जा रहा है जिसमें व्यापक जनसंहार और चीनी अधिकारियों द्वारा तिब्बती लोगों का जबरन निर्वासन शामिल है।

4. उन्होंने यह भी बताया कि तिब्बत में बडे पैमाने पर चीनी लोगों की बस्ती बसायी जा रही है।

5. उन्होंने यह रहस्योद्घाटन भी किया कि किस प्रकार चीनी लोग उदात्त बौद्ध धर्म को सुनियोजित रूप से नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं।

6. इन सब घटनाओं के बावजूद उन्होंने तिब्बत की मुद्दे को शांतिपूर्ण समझौते की इच्छा जाहिर की है।

7. तिब्बतियों के साथ अन्याय न हो यह सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने भारत व दुनिया के अन्य देशों से सहायता करने की अपील की है।

इसमें सबसे पहला बिन्दु उन लोगों का दृष्टिकोण है जिन्होंने अधिराज्य के फॉर्मूले को कभी स्वीकार नहीं किया है और जो हमेशा तिब्बत की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष में दृढ़ रहे हैं। उनके लिए तिब्बत की घटनाएं और दलाई लामा की घोषणा उनके दृष्टिकोण की पुष्टि है।

दूसरा बिंदु उन लोगों का दृष्टिकोण है जिन्होंने स्वायत्तता के साथ अधिराज्य फॉर्मूले को स्वीकार कर लिया है। यह जानकर दुःख होता है कि उन देशों ने भी यह फॉर्मूला स्वीकार कर लिया है जिन्हें हाल में ही आज़ादी मिली है। तिब्बत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के अधिकार को बिना किसी शर्त के स्वीकार करना चाहिए।

हाल में जब ब्रिटिश पार्लियामेंट में तिब्बत के प्रति महारानी सरकार की नीति के बारे में एक प्रश्न किया गया तो विदेश मंत्री की तरफ से जवाब देने वाले आर. एलेन ने कहा कि 'हम एक लंबे समय से तिब्बत

पर चीन के अधिराज्य को मान्यता देते रहे हैं, लेकिन यह मान्यता इस समझ पर आधारित रही है कि तिब्बत की स्वायत्तता बनी रहेगी।' महारानी सरकार की अब भी यही नीति है। श्री एलेन के बयान से ब्रिटेन की नीति स्पष्ट हो गयी है कि अधिराज्य को मान्यता इस समझ पर आधारित है कि तिब्बत की स्वायत्तता बनी रहेगी।

यह अलग बात है कि तिब्बत बहुत समय तक स्वायत्त नहीं रहा, चीन ने सुनियोजित रूप से और मित्रों की सलाह व चेतावनी को दरकिनार कर ताकत के प्रयोग से तिब्बत की स्वायत्तता को समाप्त कर दिया है। इन बदली हुई परिस्थितियों में जो तिब्बत की पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं और जो स्वायत्तता के मुद्दे से आगे जाने को तैयार नहीं हैं, इन दोनों पक्षों में मुश्किल से ही कोई अंतर रह गया है।

जब एक स्वतंत्र देश पर हमला होता है तो इसे आक्रमण कहते हैं और अन्य देश इस आक्रमण को रोकने तथा पीडित को बचाने का प्रयास करते हैं। इन परिस्थितियों में स्वतंत्र राष्ट्र बिना किसी हिचक के अपनी नैतिक जिम्मेदारी स्वीकार करते हैं। तो क्या ऐसी परिस्थितियों में वह दूसरा व्यवहार करेंगे जब किसी देश की स्वायत्तता पर खतरा हो या उसे नष्ट कर दिया गया हो ? क्या 1951 के चीन–तिब्बत समझौते जैसा अंतरराष्ट्रीय विषय सिर्फ चीन का निजी मामला हो सकता है।

एक तीसरा दृष्टिकोण भी है जिसके आधार पर तिब्बत की हाल की घटनाओं को देखा जा सकता है। वह है, मानवता का दृष्टिकोण। तिब्बत के लोगों की दुर्गति और दुर्भाग्य, अन्याय और गलत कदम जिसका उन्हें शिकार होना पड़ा तथा उनके साथ किये गये अपराध एवं अत्याचार, यह सब सामूहिक रूप से हमें इस बात के लिए प्रेरित करते हैं कि तिब्बत के मुद्दे को कानूनी व संवैधानिक वाद–विवाद के गुत्थियों से अलग ले जाकर साधारण मानवता के आधार पर उठाया जाए। तिब्बत में उठाया गया मानवीय मुद्दा सभी कानूनी व संवैधानिक तथा राजनयिक तर्कों से परे है। यह स्वायत्तता बनाम स्वतंत्रता अथवा चीन के अधिकारों के मुद्दे पर बहस करने का समय नहीं है।

मै तिब्बत के मुद्दे पर समर्थन जुटाने, लोगों को संघटित करने तथा जनमत को सूचित करने का प्रयास कर रहा हूं और विभिन्न सरकारों, विशेषकर एशिया व अफ्रीका की सरकारों को भी तिब्बत पर अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए। तिब्बत पर अफ्रो–एशियाई समिति गठित करने

का हमारा प्रयास भी इसी दिशा में उठाया गया एक कदम है। एशिया व अफ्रीका के नेताओं ने व्यक्तिगत रूप से इस मुद्दे पर अपना विचार प्रकट किया है लेकिन वह यदि मिलकर एकस्वर में बोलें तो इसका प्रभाव काफी व्यापक होगा।

जब ब्रिटेन व फ्रांस ने मिस्र में कार्रवाई की तो हमने बिना किसी भय के उनके कार्य की आलोचना की। जब हमने अल्जीरिया के राष्ट्रीय स्वतंत्रता का मुद्दा उचित ढंग से उठाया तब भी हम फ्रांस का विरोध करने से नहीं डरे।

इस संबंध में यह प्रश्न उठाया जाता है कि चीन संयुक्त राष्ट्र का सदस्य नहीं है। मैने हमेशा प्रधानमंत्री के इस पक्ष का समर्थन किया है कि चीन को संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश देना चाहिए। तिब्बत के मामले ने मेरे इस दृष्टिकोण को और स्पष्ट किया है। चीन इस समय राष्ट्रों के परिवार से बाहर है इसलिए उस पर संयुक्त राष्ट्र के किसी प्रकार के नैतिक दबाव की गुंजाइश नहीं है। मै समझता हूं कि चीन वर्तमान समय में अपने को और बेहतर स्थिति में पा रहा है। एक तरफ, वह किसी अंतरराष्ट्रीय पाबंदी से बंधा नहीं है तो दूसरी तरफ, वह संयुक्त राष्ट्र में अपने प्रवेश के अमेरिका द्वारा विरोध करने के मुद्दे को वर्णन कर अपने नागरिकों में इस आधार पर युद्धोन्माद पैदा कर रहा है कि पूरी दुनिया उसकी दुश्मन बन गयी है।

हालांकि यहां मै एक बात स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि मै संयुक्त राष्ट्र में चीन की सदस्यता का समर्थन कर रहा हूं लेकिन मै यह नहीं समझता कि तिब्बत के मुद्दे को इस विश्व संगठन में उठाने में उसका सदस्य न होना कोई बाधा है।

मुझे यह पूरा विश्वास है कि दलाई लामा उस देश भारत को किसी परेशानी में नहीं डालना चाहेंगे जिसने उन्हें शरण दिया है। लेकिन हमें अपनी तरफ से उनकी स्थिति को समझना होगा। हमें यह भी समझना होगा कि दलाई लामा किसी तरह के परिवर्तन या उपदेश देने के लिए भारत में नहीं आये हैं। वह अपने देश और वहां के लोगों के लिए संघर्ष करने हेतु यहां आये हैं। यह बात कोई मायने नहीं रखती कि वह इसमें सफल होते हैं या असफल। उनकी जगह कोई भी देशभक्त व्यक्ति होता तो यही काम करता।

इसलिए हमें इस युवा को अपना कार्य करने की छूट देनी चाहिए और उन्हें यह उपदेश देने का प्रयास नहीं करना चाहिए कि वह किस तरह से कार्य करें। यह एक अलग मामला है कि हम उन्हें किस हद तक स्वतंत्रता देने को तैयार है। जब उन्होंने अपने संवाददाता सम्मेलन में कहा था कि जहां कहीं भी वह अपने मंत्रिमंडल के साथ थे, तिब्बत के लोगों ने उन्हें तिब्बत की सरकार के रूप में सम्मान दिया, तो वह केवल सच बयान कर रहे थे, जो यह नहीं जानते थे कि तिब्बत विवाद का विषय बन जाएगा। यह उम्मीद करना कि दलाई लामा तिब्बत की स्वतंत्रता के आंदोलन को छोड देंगे और खुद को शुद्ध रूप से धार्मिक रूप से लक्ष्यों के प्रति सीमित रखेंगे, वास्तव में राष्ट्रवाद के आग्रह की ताकत को कम आंकना, दलाई लामा के व्यक्तिगत चरित्र को न समझ पाना और यह भूल जाना है कि उन्हें परंपरागतरूप से आध्यात्मिक व लौकिक शक्तियां व कार्य सौंपे गये हैं।

कुछ लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि मैं तिब्बत के आंदोलन से इतने उत्साह से क्यों जुडा हूं। पहला कारण यह है कि मै मानवीय स्वतंत्रता और सभी लोगों की स्वतंत्रता में विश्वास करता हूं। उदाहरण के लिए मैं समझता हूं कि अल्जीरिया की स्वतंत्रता भी उतनी ही ज़रूरी है जितनी तिब्बत की स्वतंत्रता। दूसरा कारण यह है कि मै विश्व शांति मे विश्वास रखता हूं जो कि अंतरराष्ट्रीय न्याय के बिना असंभव है। तीसरा कारण यह है कि तिब्बत हमारा पड़ोसी देश है और इस नाते हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम उसकी सहायता करें। चौथा कारण यह है कि एक हिंदू के रूप में मै गौतम बुद्ध का अनन्य भक्त हूं और सभी बौद्ध लोगों के साथ मै एक आध्यात्मिक जुड़ाव की अनुभूति करता हूं। पाँचवां कारण यह है कि जब से मैने परमपावन दलाई लामा को जाना है मै उनका गहरा सम्मान व उनसे प्रेम करने लगा हूं और अंतिम कारण यह है कि मै भी इतिहास के उन मूर्खों में से हूं जो निरंतर उन आदर्शों के लिए लड़ते रहते हैं जिन्हें दुनिया के समझदार, व्यावहारिक लोग हारी हुई लड़ाई मानते हैं।

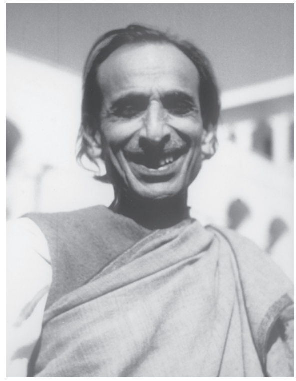

आचार्य जे०बी० कृपालानी

लोकसभा : 8 मई, 1959

विषय जितना महत्वपूर्ण है समय उतना ही कम दिया गया है। मैं कोशिश करूंगा अपनी बात संक्षेप में कहने की। राष्ट्रों का एक दूसरे की आलोचना करना कोई असामान्य बात नहीं। एक दूसरे की आन्तरिक, बाहरी नीतियों की नोंकझोंक करना भी होता रहता है। कोई भी, ऐसी आलोचना को वास्तव में अपने अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप नहीं समझना कहता है। ऐसा यदि वाकई हो जाए तो जिस तरह की कठोर आलोचना चीन युगोस्लाविया की कर रहा है वह भी उस राष्ट्र के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप ही समझा जा सकता है। परन्तु कम्युनिस्टों के पास दो तरह की जुबानें होती हैं, दो तरह की विचारधारा। एक वह जो उनके अपने लिए होती है, दूसरी दूसरों के लिए जिन्हें वह हमेशा विपक्ष ही समझते हैं।

एक राष्ट्र से जबरन व्याभिचार/रेप :

हाल ही में चीन अपनी आलोचना के प्रति बड़ा सजग हो गया है, जरा सा कुछ कहो तो तिलमिलाहट होती है। मैं यकीन से कह सकता हूं जो व्यकित जरूरत से ज्यादा सजग रहे, तिलमिलाए उसकी नीयत, उसका विवेक, उसकी अन्तरात्मा पर कोई बोझ बैठा हुआ है वह किसी अपराध– बोध से ग्रस्त है। हमारी कांग्रेस अध्यक्ष के बड़ी विनम्रता में कहे गए शब्दों की चीन ने खिल्ली उड़ाई, भर्त्सना की। क्यों? सिर्फ यही कहा था न कि ''तिब्बत एक देश है''। मेरे कथनों के बारे में चीन तिलमिलाए करना, मैं समझ सकता हूं क्योंकि मुझे उनकी बुरी नीयत उनके छल कपट पर सदैव विश्वास रहा हैं। मैं न तो चीनीयों की बातों, वादों पर विश्वास

रखता हूं, न ही उनकी खोखली विनम्रता पर। इस सदन में, मेरे अकेले की आवज़ चीन के विरोध में उठती रहीं है। 1950 में केवल मैं तथा गिने चुने अन्य मित्र थे इस सदन में जो चीन के कपट इरादों के बारे में बोलते रहे, पूर्वाभास भी था हमें। चीन को यू. एन. ओ. की सदस्यता दिलवाने के लिए यदि हमने थोड़ा विलम्ब और किया होता, समझदारी, कुटनीति से काम लिया होता तो कितना अच्छा रहता। थोड़ा संयम, थोड़ा सब्र, ऐसे मामलों में ठीक रहता है, जरूर बरता जाना चाहिए। परन्तु नहीं..... अब देखिए, चीन एक ऐसा देश जो स्वयं हाल ही में आज़ाद हुआ, ने एक ऐसे राष्ट्र का गला दबा दिया है जिसके साथ हमारे पुराने दोस्ताना संबंध ही नहीं बल्कि हमारी सुरक्षा भी जुड़ी हुई हैं। थोड़ी बहुत समझ आती है बात मुझे भी कि हमारी सरकार थोड़ा इसलिए भी उदासीन हैं कि यह सारी ट्रेजेडी हमारे देश से दूर काफी परे घट रही है सो हमें क्या लेना, पर ज़रा सोचिए, ध्यान दीजिए, यही ट्रेजेडी जो तिब्बत में घटी है वहीं कल नेपाल में घटी तो? मुझे विश्वास है, तब चाहे हमारी पूरी तैयारी हो या नहीं हमें चीन से युद्ध में भिड़ना ही पड़ेगा। तब विदेशी विरोध के बावजूद चीन को बड़े ज़ोरों से दिलवाई यू. एन. ओ. की सदस्यता का क्या होगा ?

माननीय अध्यक्ष महोदय, मैंने इस सदन को 1954 में भी कहा था। तब हमने चीन के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किए थे। मेरे विचार में चीन ने कम्युनिस्ट होने के बाद तिब्बत पर हमला करना आरम्भ कर दिया। उसकी दलील यह था कि प्राचीन समय से तिब्बत पर चीन का अधिपत्य अधिकार हैं, एक खोखली और धोखे से भरी दलील है और कुछ नहीं। और यदि मान भी लिया जाए कि उसके पास ऐसा कोई अधिकार है तो चीन को भम्र आनी चाहिए कि आज के आधुनिक समयों में, अपनी हाल को ग्रहण की गई आज़ादी के बाद जिस डैमोक्रेसी, गणतन्त्र की हमारे कम्युनिस्ट मित्र कसमें खाते हैं, उसके अन्तर्गत ऐसे घटिया, प्राचीन अधिकार भी उसे त्याग देने चाहिए। किसी कालोनी, किसी उपनिवेश को दबा कर अपने अधीन रखने के ज़माने तो अब लद गए। हमने ब्रिटेन वालों को ऐसा नहीं करने दिया तो पड़ोस में क्यों होने दें ?

तिब्बत वैसे भी सांस्कृतिक पहलू से भारत के ज्यादा करीब है ना कि चीन के। अन्य देश, जैसे पश्चिमी देशों की आदत रही है दूसरों पर हमले कर अपने नीचे दबाते रहे, हमें कोई लेना नहीं। परन्तु इस केस में हम तिब्बत से जुड़े हुए हैं, उसके पड़ोसी हैं। हमारी सारी सीमा

उधर, उससे लगती है। चीन ने अपने और हमारे बीच फैला हुआ एक शांतिपूर्ण मध्यवर्ती क्षेत्र खत्म कर दिया है जिससे आने वाले समय में अस्थिरता, अशांति की पूरी संभावना है। सो हमें अभी चाहिए कि इसका निपटारा करें। अन्तराष्ट्रीय राजनीति की नियमावली अनुसार जब एक मध्यवर्ती देश को एक शक्तिशाली राष्ट्र तबाह कर देता है तो उस राष्ट्र को अपने पड़ोसी पर आक्रमण करने वाला देश घोषित कर दिया जाता है।

इस सदन को मेरे माननीय अध्यक्ष महोदय, मैंने यह सब 2 बार कहा था। अब तक यह हम भली–भांति जान चुके हैं कि चीन के नए नक्शों में अब दूसरे सीमान्त क्षेत्र जैसे नेपाल, सिक्किम इत्यादि भी दिखाए जा रहे हैं, जैसे वह चीनी क्षेत्र रहे हैं। इससे हमें चीन के आक्रमिक तथा फैलाववादी इरादों का आभास भी हो जाना चाहिए। मैं कतई नहीं कहता कि चीन ने तिब्बत पर हमला कर उस पर कब्जा कर लिया है तो हमें उससे लड़ाई छेड़ देनी चाहिए। पर इसका यह मतलब तो नहीं कि हम चुप रहें और तिब्बत पर चीन के जबरदस्ती थोपे गए दावे को मान लें। हमें खुल कर कहना होगा कि यह एक राष्ट्र द्वारा दूसरे असहाय राष्ट्र पर घटिया और अन्यायपूर्ण हमला है।

उसी वर्ष, मैंने फिर कहा था कि :

हमारी सीमा पार स्थिर एक मध्यवर्ती राष्ट्र से उसकी स्वतन्त्रता छीन ली हैं, तथा हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। और जब हमने दबी आवाज में अपना विरोध प्राप्त किया तो क्या–क्या नहीं कहा चीन ने हमें, कहा हम पश्चिमी शक्तियों के चमचे हैं। (अगर मैं ठीक शब्दों का इस्तेमाल करूं तो चीन ने कहा था ''हम साम्राज्यवादियों के भगौड़े कुत्ते है'')

1958 में मैंने इस संदन को कहा था अध्यक्ष महोदय कि पंचशील समझौता पाप की उपज था। वह समझौता करके हमने चीन द्वारा हमारे पड़ोसी मित्र के घर ज़बरदस्ती किए जा रहे कुकृत्यों के प्रति अपनी सहमति दे डाली थी, आंखे बन्द करने की ठान ली थी। एक ऐसा पड़ोसी जो शांतिप्रिय ही नहीं था बल्कि अत्याधिक धार्मिक ओर शालीन भी।

तब माननीय अध्यक्ष महादेव, इस सदन में मेरे कुछ मित्रों ने मुझे टोका था, पूछा था ''उस राष्ट्र को चीन के तले रहते क्या तकलीफ है, बड़ा विकास हो रहा है वहां पर।'' मेरा जबाब था, ''सवाल उस देश को

तकलीफ होने या न होने का कतई नहीं है। सवाल यह है कि वह राष्ट्र जैसा भी है आज़ाद रहना चाहता है, अपनी जिन्दगी खुद जीना चाहते है। हमने भी तो अंग्रेजों के नीचे बहुत विकास किया। रेलें, जहाज, सड़कें, मोटरें इत्यादि तो फिर क्यों जाने पर मंजूर किया था उन्हें ?''

हमें फिर बताया जा रहा है कि चीन चाहें पंचशील समझौते को तोड़ दे पर हमें उसका पालन करते रहना चाहिए। माननीय महोदय, मांफ कीजिए मैं नहीं समझता कि पंचशील हमारी कोई नैतिक जरुरत है। और नैतिक जरूरतों से आज के अन्तर्राष्ट्रीय युग में हम एकतरफा कभी भी जुड़े नहीं रह सकते। पंचशील कहता है कि एक दूसरे के अस्तित्व तथा स्वतन्त्रता के प्रति परस्पर सम्मान होना चाहिए। तो बताएं मुझे कि एकतरफा सम्मान करते रहने से क्या होगा? आपने देखा जिन जिन राष्ट्रों ने पंचशील समझौते की कसमें खाई थीं वही इस समझौते की धज्जियां उड़ाते रहे हैं।

चीन भारत का मित्र कतई नहीं है। चीन ने अपनी टांग हम पर रखी हुई है। यदि हम चीन के साथ अपनी दोस्ती तथा हिन्दी–चीनी भाई–भाई के मन्त्र सुबह शाम भी अलापते रहें, मै साफ कह दूं आपको, तब भी वह राष्ट्र कभी भी हमसे दोस्ती नहीं निभाएगा। क्यों ? क्योंकि एक मित्र अपने ही एक मित्र के खिलाफ मंडी में जाकर शोर नहीं मचाता। कालिम्पांग (दार्जीलिंग) के बारे में कितना हो–हल्ला मचाया चीन ने। क्यों? क्या यह राजनीतिक स्तर पर हमारे साथ पत्राचार नहीं कर सकता था? कूटनीति के रास्ते क्या सभी बन्द थे ? दूतावासों के जरिए क्यों नहीं उसने बातचीत की? मुझे समझ नहीं आता कि जिस राष्ट्र की मानसिकता ही हमारी तरफ से ऐसी है, उसके साथ मित्रता की जरूरत हमें हो यह क्यों हैं ?

चीनी कभी भी हमारे निष्कपट इरादों पर विश्वास नहीं करेंगे। वह हमेशा यही समझेंगे कि हम शांतिप्रिय नहीं डरपोक हैं, क्योंकि जिस शांति की हम तूती छोड़ते है उसके लिए हमने कभी कुछ किया भी तो नहीं। पड़ोस के गुंडे को कभी यह नहीं सूझ सकता कि आप अपनी शराफत में चुप हैं पर हैं बलवान। वह तो हमेशा समझेगा कि आप डरपोक हैं।

जय हिन्द !

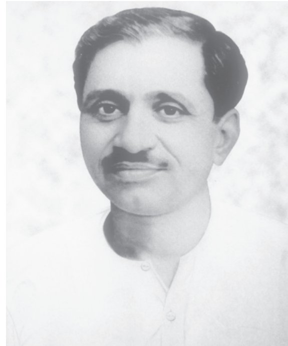

पंडित दीनदयाल उपाध्याय

तिब्बत की स्वतंत्रता में भारत का योगदान–27 अप्रैल, 1959

यह अनिवार्य रूप से शांतिपूर्ण तिब्बती जनता के प्रति हमारी चिंता और साम्यवादियों ने जिस प्रकार का व्यवहार किया उसके प्रति हमारी नाराज़गी ही है कि इस मामले में तिब्बतियों के प्रति लोगों की इतनी गहरी सहानूभूति है। यह भी हो सकता है कि हमारी अपनी रक्षा और सुरक्षा के प्रति उत्पन्न खतरे के प्रति बढ़ते बोध से लोग हज़ार बार यह सोचने को मजबूर हुए हों कि जो लोग पीड़ित हुए हैं वह हमसे अंतरंग रूप से जुड़े हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि लोग व्यग्रता से इस बात पर नज़र रखे हुए हैं कि दलाई लामा और भारत सरकार आगे क्या कदम उठाती है। इस मामले में भारत को बहुत नाजुक स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। चीन एक मित्र देश है। भारत व चीन पहले भी मित्र रहे हैं और भविष्य में भी मित्र रहना चाहेंगे।

तिब्बत एक ऐसा मामला है जिसमें भारत अपना हित दांव पर लगाकर ही परोपकारिता कर सकता है। चीन ने तिब्बत की स्वायत्तता बनाये रखने का वचन दिया है– संभवतः पंडित नेहरू को कुछ क्षमायाचना जैसा भाव प्रदान करने के लिए ताकि एक विशाल ड्रैगन के आगे एक महान उद्देश्य के अधम समर्पण के बारे में उनकी अंतर्आत्मा की आवाज़ दब जाए। लेकिन सरकार द्वारा परिणीत एकाधिकारवादी तरीके से बहुत अधिक समय तक लोगों को बहलाया नहीं जा सकता। जब चीन ने सभी क्षेत्रों में अपने तथाकथित 'सुधारों' को लागू किया तभी तिब्बत की स्वायत्तता अपने आप खंडित हो गयी। एक अत्यंत धार्मिक व आध्यात्मिक लोग विदेशी रीति–रिवाजों वाले अत्यधिक भौतिकवादी लोगों के साथ कैसे रह सकते है।

एक धार्मिक प्रमुख के नाते वह अपना कार्य जारी रख सकते हैं लेकिन क्या उनकी लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह पर्याप्त होगा। यह सच्चाई है कि भारत भूमि पर सिर्फ अपनी मौजूदगी के द्वारा ही दलाई लामा तिब्बती योद्धाओं को नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं, जो आक्रमणकारी सेना के शक्तिशाली होने के बावजूद अपने देश की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण संभवतः सक्रिय रहेंगे।

इस मामले में भारत की भी कुछ बाज़ी लगी हुई है। तिब्बत की स्वायत्तता हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि हम इसकी रक्षा नहीं कर सके तो न केवल हमारी स्वतंत्रता व अखंडता खतरे में पड़ जाएगी, बल्कि हमारे लिए गुटनिरपेक्षता की नीति को जारी रखना भी लगभग असंभव हो जाएगा। जहां तक चीन की नीयत का प्रश्न है वह बिल्कुल स्पष्ट है। चीन पहले ही ' मानचित्रीय आक्रमण' कर चुका है। अब यह बात सामने आ रही है कि चाउ–एन–लाई ने एक नया सुझाव दिया है कि चीन व अन्य एशियाई देशों के बीच अनिर्धारित सीमा को शांतिपूर्ण बातचीत के द्वारा सुलझाया जाना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि चीन, भारत व तिब्बत को विभाजित करने वाली मैकमोहन रेखा को मान्यता नहीं देता।

चीन, भारत के अलावा नेपाल, भूटान व सिक्किम पर भी बुरी नजर रखता है। एक स्वतंत्र देश के रूप में नेपाल अपनी सुरक्षा के लिए खुद ज़िम्मेदार है। लेकिन तिब्बत में साम्यवादी चीन की गतिविधियों से नेपाल के शासकों के सामने अपने देश की भविष्य में सुरक्षा का गंभीर प्रश्न खड़ा हो गया है।

तिब्बत की स्वायत्तता के प्रश्न पर केवल एक मजबूत और निश्चित नज़रिया ही चीन को सही ठहरा सकता है। दोनों देशों के बीच मित्रता बनाये रखने के लिए इस प्रकार का नज़रिया जरूरी है। यह मित्रता भरोसा व सम्मान, बराबरी व पारस्परिक लाभ पर आधारित होना चाहिए न कि डर व गलतफहमी के आधार पर। किसी के नज़रिये में अंतर खोजने से बचना चाहिए और किसी भी मसले का खुला समाधान होना चाहिए।

इसलिए दलाई लामा को सभी तरह की सुविधाएं देनी चाहिए ताकि वह संघर्षरत तिब्बती लोगों को दिशा प्रदान कर सकें। भारत के लोग यही चाहते हैं और भारत का हित भी इसी में है।

ज्ञानी ज़ैल सिंह

(भारत के पूर्व राष्ट्रपति)

तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में दिया गया भाषण

आप सब जानते हैं कि जिस सम्मेलन का मैं उद्घाटन करने आया हूं उसका उद्देश्य क्या है। मैं थोड़ी देर से आने के लिए क्षमा चाहता हूं। मेरे डॉक्टर ने सलाह दी थी कि मुझे कहीं बाहर नहीं जाना चाहिए और मेरे सचिव ने तत्काल मुझे फोन करके बताया कि मुझे सम्मेलन में नहीं आना है। लेकिन मैने कहा कि मैं निश्चित रूप से जाऊंगा। हम दोनों में इस बात पर सहमति बनी कि मैं भाषण नहीं दूंगा लेकिन सम्मेलन में भाग लूंगा और मानवाधिकार के लिए लड़ रहे तिब्बती मित्रों से मिलूंगा। मैं भारत के पूर्व राष्ट्रपति के रूप में या सरकार की तरफ से कुछ नहीं बोल रहा हूं। जो कुछ भी मैं यहां बोलूंगा वह मेरी व्यक्तिगत राय होगी और उसे गलत अर्थों में नहीं लिया जाना चाहिए।

जब कभी भी विभिन्न विचारधारा के लोग किसी कठिनाई में पड़ते हैं या पीड़ित होते हैं तो हम भारतीय उसका समर्थन करते हैं। वे यहां आते हैं और रहने लगते हैं जैसे कि आज तिब्बती लोग रह रहे हैं। आपको यह जानकर खुशी होगी कि यद्यपि हमारी सरकार इस प्रकार के सम्मेलनों से दूरी बनाए रखती है, लेकिन जनता की आवाज को दबाया नहीं जा सकता। कोई भी सरकार जनता नहीं बनाती, बल्कि जनता सरकार को बनाती है।

बदली हुई परिस्थितियों में हमारे पुराने मित्र, जो अब भी हमारे मित्र हैं, चीन और उसके नेता यह दावा कर रहे हैं कि तिब्बत उनका हिस्सा है। भारत भी इसे स्वीकार कर रहा है। लेकिन यदि तिब्बती दृष्टिकोण, भावनाओं, विचारों और जीवन पद्धति का दमन किया गया और दूसरे

लोग चुप बैठे रहे तो मैं नहीं समझता कि यह कोई अच्छी बात होगी। जब कभी भी, जहां कहीं भी लोगो की आवाज को ताकत से दबाया जाता है और उन्हें नियंत्रित रखने का प्रयास किया जाता है तो भारत के लोग चुप बैठे नहीं रह सकते। मैं इस सम्मेलन में शामिल होने वाले प्रतिनिधियों से कई चीजें कहना चाहता हूं। मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि पिछले एक–दो वर्षों में दो महाशक्तियों में मित्रता हो गई है। मुझे यह देखकर भी प्रसन्नता है कि श्री गोर्बाचेव, जिन्हें मैं शांति दूत मानता हूं, ने अपने देश में एकदलीय शासन को समाप्त कर दिया है और लोकतंत्र लाने की दिशा में ठोस कदम उठाए हैं। वारसो संधि वाले देशों में भी लोकतंत्र आ चुका है। इस प्रकार बहुत सारे बदलाव आए हैं और मैं यह समझता हूं कि इन सब बदलावों के पीछे रहने वाली जनता की आवाज भगवान की आवाज है। जनता का आह्वान सर्वशक्तिमान परमात्मा का आह्वान है। मेरा यह विश्वास है कि:

"जुल्म देखा तो शहंशाहों की हस्ती में

खुदा देखा तो लोगों की बस्ती में"

गोर्बाचेव के विचारों ने पूरे सोवियत संघ पर प्रभाव डाला और कई अन्य मुद्दों पर भी उनका प्रभाव रहा। मैं निराश नहीं हूं और मेरा मानना है कि हमारी आवाज निश्चित रूप से चीनी नेताओं तक पहुंचेगी। इससे संघर्षरत तिब्बतियों को भी मदद मिलेगी और उनमें साहस का संचार होगा।

अटल बिहारी वाजपेयी

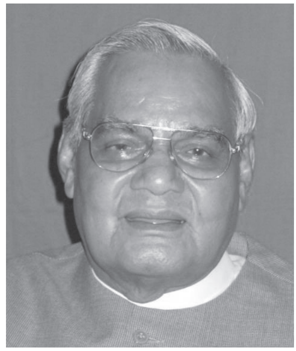

(सांसद सदस्य एवं भारतीय जनता पार्टी के नेता)

तिब्बत की आजादी

जब से चीन में कम्युनिस्ट शासन आया, च्यांग–काई–शेक के साथ बड़े मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होते हुए भी भारत ने नये चीन का स्वागत किया और संसार के राष्ट्रों में उसे सम्मान का स्थान मिले इसके लिये हमने उनसे बढ़ कर प्रयत्न किया। हमारे प्रयत्नों को देखकर कभी–कभी ऐसा लगा कि मुद्दई सुस्त है और गवाह चुस्त है। (हमने चीन की वकालत की क्योंकि हम समझते थे कि कम्युनिज़्म से हमारा मतभेद होते हुए भी यदि चीन की जनता उस मार्ग का अवलम्बन करती है तो यह उसकी चिंता का विषय है, और भिन्न–भिन्न जीवन पद्धतियों के होते हुए भी भारत और चीन मित्रता के साथ रह सकते हैं।)

लेकिन इस मित्रता को पहला आद्यात उस दिन लगा जब तिब्बत को चीन की सेनाओं ने 'मुक्त' किया। हमारे प्रधान मंत्री ने उस समय पूछा था कि तिब्बत को किससे मुक्त किया जा रहा है, तिब्बत किसी देश का गुलाम नहीं था। भारत तिब्बत का निकटतम पड़ोसी है। अतीत के इतिहास में अगर हम चाहते तो तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न कर सकते थे, लेकिन आज जो चीन के नेता भारत विस्तारवादी होने का आरोप लगाते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि हमने कभी भी तिब्बत को अपने साथ मिलाने का प्रयत्न नहीं किया। तिब्बत छोटा है। लेकिन हमने उसके पृथक अस्तित्व का समादर किया। हमने तिब्बत की स्वतंत्रता का सम्मान किया, और हम आशा करते थे कि चीन भी ऐसा ही करेगा लेकिन कम्युनिस्टों के तरीके अलग होते हैं। उनके शब्दों की परिभाषायें अलग होती है। जब वह गुलाम बनाना चाहते हैं तो कहते हैं कि हम मुक्त करने जा रहे हैं, आज जब वह दमन कर रहे हैं तो कहते हैं कि सुधार करने जा रहे हैं।

अगर कहीं सुधार करना है तो जिन्हें सुधारना हैं उनमें सुधार की प्रवृत्ति पैदा होनी चाहिए। सुधार ऊपर से नहीं लाया जा सकता।

लेकिन तिब्बत में जो कुछ हो रहा है वह सुधार नहीं है। 1950 के समझौते के अन्तर्गत तिब्बत की स्वायत्तता का चीन द्वारा समादर किया जाना चाहिए था, लेकिन चीन ने तिब्बत के अन्दरूनी मामलों में दखल दिया, चीन से लाखों की संख्या में चीनी तिब्बत में बसाये गये जिस से तिब्बत वासी अपने ही देश में अल्पसंख्या में हो जायें और आगे जा कर तिब्बत चीन का अभिन्न अंग बन जाये। तिब्बत से हजारों नौजवानों को चीन में भेजा गया, नये मजहब की शिक्षा प्राप्त करने के लिये, लेकिन जब वह लौट कर आये और चीनी नेताओं ने देखा कि उन पर असर नहीं हो रहा है, और उनका तिब्बती रंग नहीं मिटाया जा सकता, उनकी पृथकता कायम रहती है और अपनी जीवन–पद्धति की रक्षा करने का उनका उत्साह अमिट रहता है, तो उनके कान खड़े हुए और उन्होंने तिब्बत की जीवन–पद्धति को मिटाने का प्रयत्न किया। वर्तमान संघर्ष एक बड़े राष्ट्र द्वारा एक छोटे राष्ट्र को निगलने की इच्छा के कारण उत्पन्न हुआ है।

तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार कर भूल की
लोकसभा : 8 मई 1959

मेरा निवेदन है कि हमने जब तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की तो हमने बड़ी गलती की। वह दिन बड़े दुर्भाग्य का दिन था। लेकिन गलती हो गयी और हम शायद यह समझते थे कि यह मामला हल हो जायेगा, नया संघर्ष पैदा नहीं होगा, और हम दूसरों को मौका नहीं देना चाहते थे कि वे हमारे और चीन के मतभेदों का लाभ उठायें। लेकिन परिणाम क्या हुआ? चीन ने केवल तिब्बत के ही साथ हुए समझौते को नहीं तोड़ा, बल्कि उस समझौते की पृष्ठभूमि में भारत के साथ जो समझौता हुआ था, उसका भी उल्लंघन किया। पंचशील की घोषणा कहाँ गयी ? जो पंचशील के दावें करते हैं उनका कहना है कि पंचशील के अन्तर्गत लोकतंत्र और अधिनायकवाद साथ–साथ जीवित रह सकते हैं। अगर कम्युनिस्ट साम्राज्य के अन्तर्गत तिब्बत के धर्मप्रिय और शान्तिप्रिय लोग अपनी विशिष्ट जीवन–पद्धति की रक्षा नहीं कर सकते, तो यह कहना कि इतने बड़े संसार में कम्युनिज़्म और डिमॉक्रेसी साथ–साथ रह सकते हैं इसका कोई अर्थ नहीं होता। हम चीन के अन्दरूनी मामलों में दखल नहीं देना चाहते मगर तिब्बत चीन का अन्दरूनी मामला नहीं है। चीन बंधा हुआ

है तिब्बत की स्वयत्तता का समादार करने के लिये, तिब्बत के अन्दरूनी मामलों में दखल न देने के लिए। लेकिन वह समझौता टूट गया और मैं समझता हूँ कि अब भारत को भी, भारत सरकार को भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए। समझौते दोनों तरफ से चलते हैं, दोनों तरफ से पालन होते हैं। अगर चीन ने समझौता तोड़ दिया, तो हमें अधिकार है कि हम अपनी परिस्थिति पर फिर से विचार करें। क्या कारण है कि तिब्बत की जनता को उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा है ?

तिब्बत क्यों स्वतंत्र नहीं रह सकता ? कहते है कि पहले स्वतंत्र नहीं था, तो क्या जो देश पहले स्वतंत्र नहीं था, उस को स्वतंत्र होने का अधिकार नहीं हो सकता ? क्या जहाँ पहले गुलामी थी, वहाँ अब भी गुलामी रहनी चाहिए ? अगर अल्जीरिया की स्वतंत्रता की आवाज का हम समर्थन कर सकते हैं, और वह समर्थन करना फ्रांस के अन्दरूनी मामलों में दखल देना नहीं है, तो तिब्बत की स्वतंत्रता का समर्थन चीन के अन्दरूनी मामलों में दखल कैसे हो सकता है ? अभी मेरे मित्र श्री खडिलकर ने कहा कि देश में कोई भी ऐसी पार्टी नहीं है, जो तिब्बत की स्वतंत्रता का समर्थन करती है। मैं उनसे अपना मतभेद प्रकट करना चाहता हूँ। मैं एक छोटी–सी पार्टी का प्रतिनिधि हूँ, लेकिन हमारी पार्टी तिब्बत की स्वतंत्रता की हिमायत करती है। तिब्बत की आजादी की आवाज कितने लोग उठाते हैं, इससे यह आवाज सही है या गलत, इसका निर्णय नहीं हो सकता। चीनी साम्राज्यवादी अपने पशुबल के द्वारा तिब्बत की स्वतंत्रता की आवाज को आज दबा सकते हैं, मगर स्वतंत्रता की पिपासा को मिटाया नहीं जा सकता। दमन उस आन्दोलन में आग में घी का काम करेगा और आज नहीं तो कल तिब्बत की जनता अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त करके रहेगी।

मगर प्रश्न यह है कि हम उसके लिये क्या कर सकते हैं ? मैंने निवेदन किया कि हमने 1950 में गलती की। अब हमें उसका दण्ड भुगतना पड़ रहा है। लेकिन समय है प्रायश्चित करने का, गलती को पहचानने का। मैं प्रधानमंत्री जी से इस बात की आशा करता हूँ कि वह इस अवसर पर देश की करोड़ों जनता का सही प्रतिनिधित्व करेंगे। मुट्ठी–भर हमारे मित्रों को छोड़ कर सारा भारत इस प्रश्न पर एकमत है कि तिब्बत में जो कुछ हो रहा है, वह नहीं होना चाहिए। लेकिन क्या यह सम्भव है कि तिब्बत चीनी राज्य के अन्तर्गत अपनी स्वायत्तता का उपभोग कर सकेगी? मुझे तो लगता है कि कम्युनिस्ट पद्धति और स्वायत्तता दोनों परस्पर विरोधी बाते हैं। कम्युनिष्ट राज में स्वायत्तता नहीं हो सकती। माओ–त्से–तुंग ने

1930 में कहा था कि हमने ऐसा संविधान बनाया है कि अगर कोई हमसे बाहर जाना चाहेगा, तो बाहर जा सकेगा। तिब्बती तो बाहर जाने की बात नहीं करते थे। वे तो अपना पृथक अस्तित्व रखना चाहते थे, मगर उन्हें इसकी भी इजाजत नहीं दी गई।

उन्होंने यह भी कहा कि हम ऐसे फूल को खिलता हुआ देखना चाहते हैं, जिसमें हजारों पंखुड़ियाँ होगी। हजारों की तो बात अलग रही, तिब्बत की कोमल कली को भी कुचला जा रहा है। जो तिब्बत में साम्राज्यवाद बन कर बैठे हैं, वे हम पर आरोप लगा रहे हैं। हमने कभी तिब्बत को भारत में मिलाने का प्रयत्न नहीं किया। हमने जहाँ चीनी को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान देने की वकालत की थी, वहाँ हम तिब्बत को स्थान देने की वकालत कर सकते थे। यूक्रेन सोवियत संघ का अंग है, मगर वह संयुक्त राष्ट्र संघ में अलग स्थान पर बैठा है। तो क्या तिब्बत चीन के साथ होते हुए भी संयुक्त राष्ट्र संघ में अलग स्थान नहीं भर सकता था ? मगर हमने चीन की मित्रता के लिए ऐसा नहीं किया। हमें उस मित्रता का क्या प्रतिदान मिला ?

हम मित्रता आज भी चाहते हैं, मगर उस मित्रता का महल तिब्बत की आजादी की लाश पर नहीं खड़ा किया जा सकता। अन्याय को देखकर हम आँखें बन्द नहीं कर सकते। यह भारत की परम्परा रही है और इसी परम्परा में हमारे प्रधानमंत्री ने देश की विदेश नीति का संचालन किया है कि जहाँ कहीं अन्याय होगा, मानवता का हनन होगा, अत्याचार होगा, हम अपनी आवाज उठायेंगे, हम सत्य की भाषा बोलेंगे और निर्भीक होकर हम पददलित होने वाले अधिकारों का संरक्षण करेंगे। आज तिब्बत कसौटी पर है नेहरू जी की नीतिमत्ता की, तिब्बत कसौटी है भारत सरकार की दृढ़ता की, तिब्बत कसौटी है चीन की पंचशील–प्रियता की। पंचशील की घोषणायें करने से, पंचशील की जो भावना है, उसका आदर नहीं होगा। पंचशील की कसौटी आचरण है। हमारे प्रधानमंत्री कितना भी संयम से काम लें, लेकिन अगर उससे तिब्बत की समस्या हल नहीं होती, तो हमें मानना पड़ेगा कि उस नीति में थोड़ी–सी दृढ़ता, थोड़ी–सी सक्रियता लाने की आवश्यकता है।

दलाई लामा तिब्बत में रहें, या जायें, यह कोई बड़ा सवाल नहीं है। यह तो तिब्बती आपस में तय करेंगे। लेकिन तिब्बत एक कसौटी है बड़े राष्ट्र द्वारा छोटे राष्ट्र को निगलने की। अगर छोटे देश इस तरह से निगले

जायेंगे, तो संसार में शांति कायम नहीं रह सकती। दक्षिण–पूर्वी एशिया में अनेक देश ऐसे हैं जिनमें चीनी बहुसंख्या में निवास करते हैं। तिब्बत के कारण उन सब देशों में एक आशंका की लहर उत्पन्न हो गई है। जहाँ तक भारत का सवाल है, हम पर तो चीन की शनि–दृष्टि दिखाई देती है। चीन के नक्शों में हमारा प्रदेश उनका बताया गया है। चीन के कम्युनिस्टों ने च्यांग–काई–शेक को तो निकाल दिया, मगर उनके नक्शों को रख लिया। अगर वे चाहते तो नक्शों को भी निकाल सकते थे। और हमारे कम्युनिस्ट दोस्तों ने तो वह नक्शे देखें ही नहीं हैं। मुझें उनकी बात पर विश्वास नहीं होता। लेकिन यह चीन का अप्रत्यक्ष है भारत के लिए। उत्तर प्रदेश के दो स्थानों पर चीनी कब्जा जमा कर बैठे हैं। ये घटनायें आने वाले संकट की ओर संकेत करती हैं। हमें आतंकित होने की आवश्यकता नहीं है, मगर हमें दृढ़ नीति अपनानी चाहिए।

एक बात मैं और निवेदन करूँगा। दलाई लामा भारत में आये हैं। वे स्वतंत्रता के लड़ाकू है, अपने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जिसके कारण उनको अपना देश छोड़कर भारत में आना पड़ा। मैं चाहता हूँ कि अपने देश की स्वतंत्रता की लड़ाई भारत में चलाने का अधिकार होना चाहिए। उनके ऊपर जो बन्धन लगाये गये हैं, वे यद्यपि सुरक्षा के लिए हैं, लेकिन उन बन्धनों का ढीला करने की आवश्यकता है। अगर हमारे देशभक्त अंग्रेजी राज के दिनों में दूसरे देशों में जाकर भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न कर सकते थे और हमारी आँखों में सम्मान का स्थान प्राप्त कर सकते थे, तो कोई कारण नहीं कि दलाई लामा को भी इस बात की छूट न दी जाये।

दलाई लामा अगर चीन के साथ समझौता करने में सफल हों, और हमारे प्रधानमंत्री इस सम्बन्ध में कोई मध्यस्थता कर सकें तो इससे बढ़कर देश की जनता को कोई और आनन्द नहीं होगा। लेकिन अगर चीन के नेताओं को सीधी राह पर नहीं लाया जा सकता, राजनीतिक या कूटनीतिक दबाव से उन्हें नहीं समझाया जा सकता और बर्मा, लंका और इंडोनेशिया के जनमत को जाग्रत करके, संगठित करके, प्रभावी रूप से उसका प्रकटीकरण करके, अगर चीन पर असर नहीं डाला जा सकता, तो भारत के सामने इसके सिवा कोई विकल्प नहीं रहेगा कि हम दलाई लामा को छूट दे दें कि वह अपने देश की आजादी के लिए प्रयत्न करें।

भारत के नौजवान तिब्बत की स्वतंत्रता को अमूल्य समझते है– इसलिए

नहीं कि तिब्बत के साथ उनके घनिष्ठ संबंध हैं, अपितु इसलिए कि हम गुलामी में रह चुके हैं, हम गुलामी का दुख और दर्द जानते हैं, हम आजादी की कीमत जानते हैं – उन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता दी जाये। तिब्बत की जनता अगर आजादी के लिए संघर्ष करती है तो भारत की जनता उसके साथ होगी। हम अपनी सहानुभति उनको देंगे और हम चीन से भी आशा करते है कि वह साम्राज्यवाद की बाते न करें। साम्राज्यवाद के दिन लग गये। किन्तु यह नया साम्राज्यवाद है। इसका खतरा यह है कि यह एक क्रान्ति के आवरण में आता है, यह इन्कलाब की पोशाक पहन कर आता है, यह नई व्यस्था का नारा लगाता हुआ आता है, मगर यह उपनिवेशवाद है या यह साम्राज्यवाद। अतीत में हमें गोरों के साम्राज्यवाद से लड़ते रहे लेकिन अब विश्व की छत पर यह पीलों साम्राज्यवाद भी प्रकट हो रहा है। हमें दृढ़ता के साथ उसका भी मुकाबला करना चाहिए।

भारत की तिब्बत नीति
लोकसभा : 4 सितंबर 1959

तिब्बत की समस्या हमारे सामने है। पहली बार जब तिब्बत का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में उठा तो जैसा कि प्रधानमंत्री जी ने कहा, हमारे प्रतिनिधि ने उस समय आशा प्रकट की थी कि तिब्बत की समस्या शांति के साथ चीन से वार्ता द्वारा हल हो जायेगी, लेकिन पिछले नौ साल का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि तिब्बत की समस्या को शांति से हल करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

चीन ने तिब्बत में बल प्रयोग किया। चीन ने तिब्बत के स्वतंत्र अस्तित्व को मिटाने की कोशिश की। मैंने कहा था कि आज प्रश्न केवल तिब्बत की स्वायत्तता का या स्वतंत्रता का नहीं है। बल्कि प्रश्न यह है कि क्या तिब्बत एक पृथक देश के नाते, अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ जीवित रहेगा ? यदि भारत सरकार की यह आशा, कि तिब्बत का प्रश्न शांति से हल होगा, पूरी हो जाती तो भारत को और सदन को बड़ी प्रसन्नता होती। लेकिन अभी तक के जो आसार दिखायी देते हैं उनसे इस बात की आशा नहीं है कि आपस की वार्ता द्वारा अब इसको हल किया जा सकता है। प्रधानमंत्री जी ने भी अपने भाषण में इस तरह की कोई आशा प्रकट नहीं की है। हमने दलाई लामा को और उनके साथियों को भारत में स्थान दिया, बहुत काम किया और सब इसका स्वागत करते हैं। किन्तु क्या दलाई लामा को आश्रय देने के साथ ही तिब्बत के सम्बन्ध में भारत

का कर्तव्य पूरा हो जाता है? क्या दलाई लामा और उनके साथी कभी सम्मान के साथ तिब्बत वापस लौट सकेंगे ? क्या तिब्बत की ऑटोनमी, जिसकी चीन ने गांरटी दी थी, फिर से वापस आ सकेगी ? क्या तिब्बत अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकेगा ? इस प्रश्नों को कोई उत्तर नहीं दिया गया।

प्रधानमंत्री जी ने कहा कि उनकी नीति चीन के साथ मित्रता रखने की है। उनकी इस नीति से सारा देश सहमत है। चीन से क्या, हम पाकिस्तान से भी मित्रता चाहते हैं। दुनिया के सारे देशों से दोस्ती चाहते हैं, किंतु सवाल यह है उस मित्रता का आधार क्या होगा ? किस कीमत पर वह दोस्ती की जाएगी ? हम फ्रांस से दोस्ती चाहते हैं मगर इसलिए हम अल्जीरिया की आजादी का समर्थन करने से इन्कार नहीं कर सकते। हम पुर्तगाल से भी दोस्ती चाहते हैं मगर इसके लिए हम गोवा की स्वतंत्रता की माँग को बन्द नहीं कर सकते। हम दक्षिणी अफ्रिका से भी मित्रता करना चाहते हैं, मगर इस कारण हमने दक्षिण अफ्रीका के गैर–श्वेतों का सवाल संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठाने से मना नहीं कर दिया। हर साल हम संयुक्त राष्ट्र संघ में अफ्रीका में भारतीयों का प्रश्न उठाते हैं। हर साल दक्षिण अफ्रीका संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय को नहीं मानता, मगर हम इस प्रश्न को उठाते हैं क्योंकि हम समझते हैं कि विश्व के जनमत को जाग्रत करने के अलावा इन सवालों को हल करने का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

मैंने जब तिब्बत के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने का प्रस्ताव किया तो मेरा उद्देश्य स्पष्ट था कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास करते हैं इसलिए हमें तिब्बत के सवाल को वहाँ ले जाना चाहिए। और तिब्बत के शिकायत के औचित्य में भी हम विश्वास करते है, इसलिए भी हमें तिब्बत के सवाल को वहाँ ले जाना चाहिए।

अब तिब्बत के सवाल को वहाँ ले जाने से फायदा होगा या नहीं होगा, मैं समझता हूँ कि इसका निर्णय अगर हम न करें और तिब्बत के सर्वोच्च नेता दलाई लामा के फैसले के अनुसार चलें तो ज्यादा अच्छा होगा। तिब्बत का भला किसमें है, क्या दलाई लामा से अधिक और कोई इस बात का फैसला कर सकता है? और दलाई लामा ने 30 अगस्त को दुनिया के सभी सिविलाइज्ड नेशन्स के नाम एक अपील की है, जिनमें भारत भी आता है, कि तिब्बत के सवाल को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाना

चाहिए। प्रधानमंत्री जी अब मेरे प्रस्ताव को मानने से इन्कार करते हैं तो वह दलाई लामा की अपील को मानने से भी इन्कार करते हैं। अगर दलाई लामा समझते हैं कि तिब्बत की समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने से कुछ लाभ होगा तो मैं समझता हूँ कि भारत को उस प्रश्न को उठाना चाहिए। प्रधानमंत्री जी ने यह भी स्पष्ट नहीं किया कि अगर और कोई देश तिब्बत के सवाल को संयुक्त राष्ट्र संघ में लाएगा तो उस समय हमारी नीति क्या होगी। हम दुनिया के और किसी देश को यह सवाल लाने से नहीं रोक सकते। क्या हम उस समय यह कहेंगे कि यह सवाल नहीं लाया जाना चाहिए ? इस सम्बन्ध में हमारा जो प्रतिनितिमंडल जनरल असेम्बली में भाग लेने जा रहा है उसको स्पष्ट निर्देश देना चाहिए। मुझे संदेश होता है कि हमारे प्रतिनिधिमंडल के जो नेता असेम्बली में भाग लेने जा रहे हैं वे वहाँ भारत की भावनाओं की सही प्रतिनिधित्व कर सकेंगे। एक बार पहले भी वे हंगरी के सवाल पर भारत की जनता की भावनाओं को सही रूप से प्रकट नहीं कर सके थे। प्रधानमंत्री कुछ कहते थे और हमारे प्रतिनिधिमंडल के नेता कुछ कहते थे। मुझे डर है कि तिब्बत के सवाल पर यह इतिहास न दुहराया जाए। इसलिए अगर भारत सरकार स्वयं तिब्बत के प्रश्नों को नहीं उठाती है तो जैसा कि कांग्रेस के सदस्य डॉ0 गोहोकर ने संशोधन रखा है, अगर कोई और देश इस प्रश्न को उठाता है तो भारत को उसका समर्थन करना चाहिए। पिछली बार हमने समर्थन नहीं किया इसलिए दुनिया का कोई भी देश आगे नहीं बढ़ा। आखिर तिब्बत में हमारी सबसे अधिक रूचि है, हम तिब्बत से सबसे अधिक सहानुभूति रखते हैं, तिब्बत हमारा पड़ोसी देश है।

मैं यह पूछना चाहता हूँ कि अगर तिब्बत के सवाल को किसी और देश ने उठाया तो भारत की नीति क्या होगी ? मैं यह जानना चाहता हूँ कि कांग्रेस के सदस्य ने जो संशोधन रखा है उसके सम्बन्ध में सरकार का क्या मत है ? वह मेरा संशोधन नहीं है। और प्रधानमंत्री जी ने उस सम्बन्ध में सरकार के दृष्टिकोण का कोई स्पष्टीकरण नहीं किया हैं।

तिब्बत के सवाल पर व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं, यह ठीक है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने के अलावा तिब्बत की समस्या का और कोई हल दिखायी नहीं देता। वहाँ गरमागरम भाषण होंगे, यह ठीक है। लेकिन अगर हम संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास करते हैं और चीन संयुक्त राष्ट्र संघ में जाना चाहता है, तो फिर विश्व के जनमत का चीन पर जरूर कुछ प्रभाव होना चाहिए। अब भारत के सामने एक ही रास्ता है कि हम

विश्व की आत्मा से अपील करें, हम विश्व की चेतना को जगाएं। तिब्बत में हो रहे मानवअधिकारों के हनन की प्रति विश्व के जनमत को जाग्रत करें। और यदि कम्युनिस्ट चीन पर उसका असर नहीं होता तो हमें यह संतोष होगा कि हमने अपने कर्तव्य का पालन किया। हम जानना चाहते हैं कि भारत सरकार की तिब्बत के प्रति नीति क्या है ? क्या हाथ पर हाथ रखे रहने की नीति है? क्या अनिश्चय की नीति है, असहायता की नीति है ? आखिर तिब्बत की समस्या को शांतिपूर्वक हल करने के लिए हम कौन–सा कदम उठा रहे हैं ? दलाई लामा को शरण देने से तिब्बत की समस्या हल नहीं होती।

मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। अभी भारत ने फैसला किया है कि हम चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में लाने के प्रस्ताव को इस बार फिर से उठायेंगे। पिछले सात सालों से हम इस प्रश्न को उठा रहे हैं लेकिन क्या आज की परिस्थिति में इस प्रस्ताव को हम उठाएं, इस बात की आवश्यकता है? चीन संयुक्त राष्ट्र संघ में आना चाहे, मगर जो कुछ हो रहा है हमारे और चीन के बीच में, क्या उसको देखते हुए हमें पहल करनी चाहिए चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में जगह देने की ? मैं समझता हूँ कि समय आ गया है कि भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन को प्रवेश दिलाने के प्रस्ताव को ड्राप कर दे। अगर दुनिया का कोई भी देश उस सवाल को उठाए तो हम उसका समर्थन कर दें। यदि हम तिब्बत के सवाल को उठाने को तैयार नहीं है, तो फिर चीन जो कुछ हमारे साथ कर रहा है, उसको देखते हुए चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश दिलाने के लिए हम पहल क्यों करें ? चीन से मित्रता का यह अर्थ नहीं है कि वे लात मारते जाएं और हम उनके चरणों को चूमते जाएं। मित्रता आत्मसम्मान के आधार पर हो सकती है। चीन आक्रमणकारी है, चीन हमारी सीमा पर प्रवेश करने आया है। हमारे दरवाजे खटखटा रहा है और प्रधानमंत्री जी कहते हैं हम सीमा के सम्बन्ध में बात करने को तैयार नहीं है। मैं समझता हूँ कि हमें अब चीन के सवाल को उठाना नहीं चाहिए। मैं इस सदन से अपील करूंगा कि वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करे और यह सिद्ध करें कि कुछ अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयों से भारत तिब्बत के सवाल को भले ही न उठा सके, मगर भारत की जनता की भावनाएं तिब्बत की जनता के साथ है, दलाई लामा के साथ हैं।

भारत की भावना
लोकसभा : 17 मार्च 1960

आज समाचार पत्रों में यह खबर निकली है कि मिसामारी कैम्प से जो तिब्बती रिफ्यूजी धर्मशाला भेजे जा रहे थे उनमें से 5 गाड़ी में मर गये, और इस खबर के अनुसार 30 तिब्बती रिफ्यूजी का पता नहीं है, शायद वे रास्ते में कहीं गायब हो गये होंगे। खबर में यह भी लिखा कि सरकार ने उनके डाक्टरी इलाज का कोई इन्तजाम नहीं किया। उनके साथ रास्ते में कोई अनुवादक नहीं थे, जो उनकी कठिनाइयों को समझते और उनके निराकरण का प्रयत्न कर सकते।

जब शरणार्थियों को धर्मशाला में बसाने का फैसला किया गया है और शासन उसके लिए हमसे धनराशि की माँग भी कर रहा है, तो मैं समझता हूँ कि बीच में उनको ले जाने का ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए था जिसमें किसी को कोई शिकायत का मौका नहीं मिलता।

तिब्बती रिफ्यूजी दुर्भाग्य से हमारे देश में आये हैं। मैं समझता हूँ कि उनके बसाने मात्र से हम अपने कर्तव्य की जिम्मेदारी नहीं समझ सकते। इस विवाद में दिल्ली में होने वाले तिब्बती कन्वेंशन की बहुत चर्चा होती है। मुझे यह देखकर दुख होता है कि हमारी सरकार ने विशेषकर हमारे प्रधानमंत्री ने उस कन्वेंशन के सम्बन्ध में अपनी नाराजगी जाहिर की है। यह बात सही है कि वह कन्वेंशन जनता की ओर से हो रहा है। भले ही सरकार तिब्बत के प्रति अपने कर्तव्य को न समझे, मगर देश की जनता समझती है कि तिब्बत के प्रति हमारा नैतिक कर्तव्य क्या है। विदेशी गुलामी से निकला हुआ भारत उन देशों के प्रति अपनी सहानुभूति के प्रकटीकरण से नहीं रूक सकता जो नये–नये गुलामी के फंदे में जकड़े जा रहे हैं। प्रधानमंत्री जी शायद भूल गये हैं, मैं उन्हें स्मरण दिला दूँ कि 7 दिसम्बर 1950 को उन्होंने इसी सदन में खड़े होकर कहा था। मैं उनके शब्दों को कोट कर रहा हूँ।

''अपनी प्रत्यक्ष सीमा से बाहर किसी अन्य क्षेत्र पर अपनी संप्रभुता और अधिपत्य की बातें करना किसी देश के लिए ठीक नहीं है...। यह बात कहना सही और उपयुक्त होगा, और मैं इसे चीनी सरकार से कहने में कोई मुश्किल नहीं देखता, कि तिब्बत पर आपकी संप्रभुता या तिब्बत पर आपका आधिपत्य है या नहीं, लेकिन सिद्धांतों के अनुसार, सिद्धांत

जिन्हें आप उद्घोषित करते है और सिद्धांत जिन्हें मैं उद्घोषित करता हूँ, तिब्बत के बारे में अंतिम आवाज तिब्बत की जनता की होगी और किसी की नहीं।''

यह शब्द भुलाये नहीं जा सकते, मगर इन शब्दों के अनुसार अगर हम भारत सरकार के तिब्बत के सम्बन्ध में आज के आचरण को देखें तो बड़ी विसंगति दिखाई देती है। हमारे प्रधानमंत्री जीवन भर साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरूध संघर्ष करते रहे। हो सकता है कि आज प्रधानमंत्री के आसन पर बैठ कर उनके सामने कुछ ऐसी कठिनाइयां आती हों कि वह अपने हृदय के भावों को ठीक तरीके से प्रकट न कर सकते हों। लेकिन मैं नहीं समझता कि अगर कहीं मानवता पर कुठाराघात होता है, मानव– अधिकारों का उल्लंघन होता है, जिस प्रकार कि तिब्बत में तिब्बत के व्यक्तित्व को समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है, तो उनके दिल में तिलमिलाहट नहीं होगी।

अगर बोल नहीं सकते, तिब्बत की जनता की माँगों का समर्थन नहीं कर सकते, तो मैं समझता हूँ, भारत की जनता एशियाई–अफ्रीकी देशों का एक सम्मेलन का आयोजन करें जो तिब्बत के प्रति सहानुभूति प्रकट हो, तो उन्हें कम से कम उसके सम्बन्ध में अपनी नारजगी तो नहीं प्रकट करनी चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टी की नीति हम समझ सकते हैं क्योंकि जो कम्युनिस्ट पार्टी आत्मनिर्णय के अधिकार का नारा लगाती है और जिस नारे के आधार पर उन्होंने पाकिस्तान की साम्प्रदायिक माँग का समर्थन किया, वही कम्युनिस्ट पार्टी आत्मनिर्णय के अधिकार के सिद्धान्त को तिब्बत पर लागू करने के लिए तैयार नहीं है। कामरेड खुश्चेव आत्मनिर्णय के अधिकार को पख्तूनिस्तान के उपर लागू कर सकते हैं मगर तिब्बत के बारे में यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी नहीं बोलेगी। वे न बोलें लेकिन वे हमें भी बोलने नहीं देना चाहते और हमारे प्रधानमंत्री जी की इसलिए प्रशंसा करते हैं कि परिस्थिति की कठिनाइयों के कारण वे तिब्बत की जनता के प्रति अपना समर्थन खुले रूप से प्रकट नहीं कर सकते।

अब जहाँ तक भावना का सवाल है, मैं कभी यह मानने को तेयार नहीं हूँ कि हमारे प्रधानमंत्री जी की भावनाएं तिब्बत की जनता के साथ नहीं हैं। चीन ने तिब्बत को आश्वासन दिया कि वह तिब्बत की स्वायत्तता का समादर करेगा और इसी आश्वासन के आधार पर तिब्बत ने अपने सौवरेन्टी का थोड़ा–सा हिस्सा चीन को सौंप दिया, लेकिन जब चीन ने

इस समझौते का उल्लंघन कर दिया तो फिर तिब्बत ने अपनी सौवरेन्टी का हिस्सा चीन को सौंपा था वह उसको वापस मिल जाता है और इसलिए यह कहना कि तिब्बत अपनी स्वायत्तता की माँग नहीं कर सकता, मैं समझता हूँ कि कानूनी दृष्टि से भी ठीक नहीं है।

अगर ऐसी कठिनाइयाँ हैं सरकार के मार्ग में कि वह कुछ नहीं कर सकती तो भारतीय जनता जो सहानुभति प्रकट करना चाहती है उसके सम्बन्ध में तो ऐसे शब्दों का प्रकटीकरण नहीं होना चाहिए जो जनता की भावनाओं को ठेस पहुँचाते हों।

मैं समझता हूँ कि तिब्बत की स्वायत्तता के साथ भारत की सुरक्षा जुड़ी हुई है। अगर हम अल्जीरिया की स्वतंत्रता का समर्थन कर सकते हैं और कम्युनिस्ट पार्टी उसमें आगे बढ़कर हिस्सा ले सकती है तो फिर तिब्बत की स्वायत्तता के सम्बन्ध में किसी प्रकार की माँग के विरोध में आवाज नहीं उठानी चाहिए। लेकिन चीन दावा करता है कि तिब्बत चीन का अंग है। जैसे कि पुर्तगाल दावा करता है कि गोआ पुर्तगाल का अंग है। हम पुर्तगाल के इस दावे को नहीं मान सकते और चीन का यह दावा भी नहीं माना जा सकता। चीन ने तिब्बत को संसार के मानचित्र से उठा दिया। मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि भारत सरकार ने भी जो नक्शे छापे हैं उनमें तिब्बत नहीं है। तिब्बत नक्शें से मिट गया। तिब्बत का नाम उन नक्शों के उपर नहीं है। वहाँ केवल चीन लिखा हुआ है। चीन ने तिब्बत को मिटा दिया तो क्या हमारे लिए भी तिब्बत मिट गया? मैं नहीं समझता कि इस नीति का कोई अच्छा परिणाम होने वाला है। नैतिक दृष्टि से तो यह नीति भारत के लिए उपयुक्त है या नहीं परन्तु अगर हम संकुचित राष्ट्रीय स्वार्थों की दृष्टि से भी विचार करें तो भी तिब्बत का इस तरह मिट जाना दूरगामी दृष्टि से भारत के हित में नहीं हो सकता।

तिब्बत के मसले पर संयुक्त राष्ट्र में भारत की स्थिति; 22 नवंबर, 1960, लोकसभा

यह कहा जा रहा है कि हमने तिब्बत में मानवाधिकार हनन का थ. इलैंड एवं मलेशिया द्वारा किए जा रहे विरोध का समर्थन नहीं करने का निर्णय लिया है। यदि भारत तिब्बत के आत्मनिर्धारण के अधिकार को मान्यता नहीं देता है तो ऐसा इस वजह से हो सकता है कि भारत को यह नीति ब्रिटिश शासन से विरासत में मिली है कि तिब्बत पर चीन का

अधिकार है। लेकिन जहां तक मानवाधिकारों के हनन का सवाल है भारत इस मामले में मूकदर्शक नहीं बना रह सकता। यह मानते हुए कि यह सवाल शीत युद्ध का मामला है और हम यह नहीं चाहते कि इस पर फिर से शीत युद्ध शुरू हो, या यह कहना कि चीन संयुक्त राष्ट्र में नहीं है इसलिए वहां इस मसले को उठाना सही नहीं है, ऐसे तर्क मेरी समझ से परे हैं। यदि चीन वहां नहीं है तो इसमें हम क्या कर सकते हैं? लेकिन यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम भारत और तिब्बत की जनता की भावनाओं को व्यक्त करें। यदि हम साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खात्मे की बात करते हैं, हम अल्जीरिया में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद के खिलाफ हैं, तो हम हिमालय की चोटी पर अपनी सीमा पर उभरने वाले नए साम्राज्यवाद से आंखें नहीं मूंद सकते। मेरा अनुरोध है कि भारत सरकार इस बारे में अपनी नीति पर पुनर्विचार करे।

जी हां, यह सही है कि यदि तिब्बत का सवाल संयुक्त राष्ट्र में उठाया जाता है तो भी वहां इसका कोई हल नहीं निकल सकता। लेकिन हम वहां पहले भी कई सवाल उठा चुके हैं, जिनका हल नहीं निकला है और ऐसा होने पर भी हमें यह संतोष रहा कि हमने अपना कर्तव्य तो निभाया। जब हम यह दावा करते हैं कि पूरी दुनिया में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ आवाज उठाएंगे तो हम तिब्बत में हो रही घटनाओं पर आंख मूंदकर नहीं बैठ सकते।

(अंग्रेजी से अनूदित)

एस निजलिंगप्पा

(भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष और कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री)

तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिया गया उद्घाटन भाषण

यह मेरे लिए खुशी की बात है कि मुझे इस महत्वपूर्ण सम्मेलन के उद्घाटन के लिए बुलाया गया है। हम यहां बड़े अच्छे उद्देश्य से और एक महान आंदोलन के लिए एकत्रित हुए हैं। तिब्बत का आंदोलन सिर्फ तिब्बतियों का आंदोलन नहीं है बल्कि पूरी दुनिया का आंदोलन है। इसी वजह से दुनिया के कोने–कोने से आप सब मित्र यहां उपस्थिति हुए हैं। यह कोई पहली बार नहीं है कि इस मुद्दे ने हमारे देश के लोगों का ध्यान खींचा है और हम इसके लिए चिंतित हो रहे हैं। दुर्भाग्य से चीन में बहुत कुछ गलत हुआ है। अपने लंबे इतिहास में हजारों वर्षों में भगवान बुद्ध और उनके अपने देश के भी महान चिंतकों का जो भी प्रभाव पड़ा है उसे देखते हुए उनका यह कदम दुखद और आश्चर्य में डालने वाला है। संभवतः आप सबको याद होगा कि चाउ–एन–लाई, जवाहर लाल नेहरू और सीलोन के नेता के बीच एक समझौता हुआ था जिसे पंचशील (शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पांच सिद्धांत) समझौता कहा जाता है। यह दुनिया के कई हिस्सों में अपनाया गया आला दर्जे का दर्शन और नीति है। दुर्भाग्य से इस समझौते के एक पक्ष चीन ने इसका उल्लंघन किया और तिब्बत पर हमला कर दिया। पंचशील का एक बिंदु यह भी था कि कोई ताकतवर देश या पक्ष किसी कमजोर पक्ष पर हमला नहीं करेगा। मैं नहीं समझ पा रहा कि चीन ने ऐसा क्यों किया। उसने गलत किया। गांधी जी का कहना था कि एक गलत कदम को वापस ले लेने का मतलब कि आपने प्रगति की दिशा में एक कदम बढ़ाया है और मुझे उम्मीद है कि चीन अपने इस कदम को पीछे खींचेगा। तिब्बत पर चीनी सेना ने कब्जा कर लिया है,

लोगों को कैद किया जा रहा है, मठों के काम में अड़चन डाला जा रहा है या उसे नष्ट किया जा रहा है। लोगों को उनके बुनियादी अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। तिब्बत के लोग इस अपवित्र कब्जे का दंश भोग रहे हैं। आप सभी के साथ मुझे भी उन लोगों से सहानुभूति है। मेरी व्यक्तिगत धारणा, मेरा विचार यह है कि चीन का आम आदमी तिब्बत की जनता के साथ सहानुभूति रखता है। केवल चीन के शासक और नेताओं को ही तिब्बती जनता के दर्द से कुछ लेना देना नहीं है। इसलिए, मैं चीन के नेताओं और जनता से निवेदन करता हूं कि वह अपने इस कदम को पीछे हटाएं। यदि आप चीन जाएं और वहां के लोगों की राय लें तो वह निश्चित रूप से इस अपवित्र कब्जे के समर्थन में नहीं होंगे।

मैं अब दुनिया में जितने भी लोगों से मिला हूं उसमें परमपावन दलाई लामा सबसे अच्छे, सज्जन और सबसे आध्यात्मिक लोगों में से हैं। उन्होंने चीन और तिब्बत के बीच आपसी समझ से इस कब्जे को हटाने के लिए एक योजना पेश की है। उनके द्वारा सुझाए गए पांच बिंदु बहुत अच्छे हैं और स्वीकार्य करने योग्य हैं। पूरी दुनिया यह सोचती है कि केवल यही एक योजना है जिसे लागू कर तिब्बत में शांति लाई जा सकती है। हम समझते हैं कि चीन का अपना प्रयोजन है, अपनी समस्याएं हैं और कुछ दिनों ही पहले हमने इसे देखा भी है कि किस प्रकार मार्क्सवादी चीन में लोकतंत्र न आने देने के लिए जूझ रहा है। मैं यह कहने के लिए इसलिए मजबूर हुआ हूं क्योंकि वैज्ञानिक विकास की वजह से, विशेषकर पिछले दो सौ वर्षों में पूरी दुनिया सिमटकर बहुत छोटी हो गई है। दूरियां घटती जा रही हैं। इसलिए यह जरूरी हो गया है कि दुनिया के सभी लोग को एक विश्व के नागरिक बनें। दुनिया के किसी भी एक हिस्से में जो कुछ घटित होता है दूसरे हिस्सों में उसकी प्रतिक्रिया जरूर होगी। तिब्बत के बारे में भी हम सभी उनकी भावनाओं से सहमत हैं और यह मानते हैं कि परमपावन दलाई लामा की योजना को लागू किया जाना चाहिए। मैं इस जगह से आपके मित्र के रूप में एक छोटे आदमी के रूप में ही निवेदन कर रहा हूं लेकिन मैं पूरी दुनिया से जुड़ा हूं। मैं अपने अंतिम दिनों से पहले एक ऐसी दुनिया देखना चाहता हूं जिसमें मित्रता का भाव प्रबल हो, एक–दूसरे के प्रति प्यार की भावना हो। यदि हम पागल हो जाएंगे तो हमारी सारी उपलब्धि नष्ट हो जाएगी। मैं समझता हूं कि दुनिया के जिम्मेदार नागरिक इसे स्वीकार करेंगे और इसलिए मैं इस विषय पर ज्यादा न बोलते हुए तिब्बत की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा।

तिब्बत के लोग चीन से अलग हैं, दोनों देशों के नागरिक में कुछ भी समानता नहीं है, सिवाय इसके कि दोनों मनुष्य हैं। फिर दोनों में आखिर क्या समानता है? वे एक शांत जगह में रहते हैं, दुनिया के अन्य हिस्सों से काफी दूर, भू अवस्थित और दुनिया की सबसे ऊंचाई पर। वे शांति प्रिय लोग हैं और उन्होंने किसी पर भी कोई हमला नहीं किया है। मैं समझता हूं कि हाल में एक ऐसा समय आया था जब चीन ने तिब्बत की स्वतंत्रता की बात स्वीकार की थी। फिर अब क्या हुआ? वे सांस्कृतिक रूप से चीन से भिन्न हैं, धर्मिक रूप से भिन्न हैं और शारीरिक रूप से भी भिन्न हैं। चीन स्वतंत्रता मिलने के बाद और खुद को विकसित करने के प्रयास के बाद मजबूत हुआ है। इसकी वजह यह है कि तिब्बती लोग कमजोर हैं, वे कम संख्या में हैं। पहले उनकी जनसंख्या 70 लाख के करीब थी जो अब चीनी नेताओं की क्रूरता की वजह से घटकर 60 लाख ही रह गई है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि दुनिया के हर कोने के लोग इस पर मिल कर विचार करें, इसलिए हम बैठक कर रहे हैं, हम पांचवीं या छठीं बार इस तरह से मिल रहे हैं। हम मिलते हैं और उनसे अपील करते हैं, चीन से अपील करते हैं कि लोकतंत्र बहाल किया जाए। गोर्बाचेव द्वारा स्वीकार किए गए और कुछ हद तक लागू किए गए दर्शन की वजह से अब रूस जैसा देश भी बदल रहा है। चीन को भी बदलना चाहिए। यह अच्छी बात है। मेरी कामना है कि आखिरकार लोकतंत्र की रक्षा हो और कम से कम मूल अधिकारों को जरूर बचाया जा सके। इसलिए मेरी कामना यही है कि चीन भी इस बात को स्वीकार करेगा कि उनको (तिब्बतियों को) भी उतना ही मूल अधिकार हासिल है जितना कि चीनियों को। तिब्बतियों को इस दासता की स्थिति से मुक्त करना चाहिए। इसलिए मैं यह कह रहा हूं कि आपको एक निर्णय लेना चाहिए और यह सम्मेलन तिब्बत की आजादी तक सीमित न रहकर दक्षिण एशिया में शांति की भी बात करे। मेरे ख्याल से दक्षिण एशिया में भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, एक ऐसा देश नेपाल जिसके साथ अभी हमारे थोड़े मतभेद हुए हैं और कई अन्य छोटे देश आते हैं। मुझे यह देखकर खुशी हो रही है कि संसद के सबसे पुराने सदस्य, बुजुर्ग से बुजुर्ग सांसद यहां आए और इस सम्मेलन में हिस्सा लिया। यह सब देखकर मैं बहुत खुश हूं। इसलिए आपको अब निर्णय लेना चाहिए, चीन को यह कहना चाहिए कि वह बाहर जाए और तिब्बतियों को खुद के विकास का अवसर दे। अपनी सेना या नागरिकों को वहां से बाहर करो। आप तिब्बत में परमाणु कचरा दबाने

जा रहे हैं, आखिर क्यों? ऊर्जा हासिल करने के कई अन्य तरीके भी हैं। परमाणु ऊर्जा का दोहन मत करो। इसका दुरुपयोग मत करो। हम ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग कर सकते हैं। तिब्बत में परमाणु कचरे का निबटारा मत करो। यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है। इसलिए मैं भारत एवं चीन और इस सम्मेलन में शामिल पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश के अपने मित्रों से भी निवेदन करूंगा कि यही सही समय है जब हमें शांति लाने का प्रयास करना होगा। मैं अपनी बात संस्कृत के एक श्लोक से समाप्त करना चाहूंगाः

सह नौ भवतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यम करवावही,

तेजस्विना अधीतमस्तु मा विद्विसावही,

ओम शांति, शांति, शांति

(तैतेरीय उपनिषद)

ईश्वर हमारी रक्षा करे, ईश्वर हमसे खुश रहे

हम एक साथ मिलकर पौरुष के साथ काम करें,

हमारी शिक्षा हमारे ज्ञानचक्षु खोले,

हमारे बीच किसी प्रकार की शत्रुता न हो।

मैं दुनिया के हर नागरिक से अनुरोध करना चाहूंगा कि वह इस दर्शन को अपनाए–

चलो साथ–साथ रहें, साथ–साथ खाएं, साथ–साथ काम करें, साथ–साथ सोचें और दुनिया में शांति, समृद्धि एवं प्रगति लाएं।

(अंग्रेजी से अनूदित)

रबि रे

(लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष)

तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिया गया भाषण

इस विषय पर ज्यादा कुछ बोलने से पहले मैं कुछ टिप्पणी करना चाहूंगा। कल से ही मैं अपने प्रतिष्ठित मित्रों के जानकारीपूर्ण संभाषण को सुन रहा था और मैं यह स्वीकारोक्ति करना चाहता हूं कि स्वतंत्रता के लिए हमारे संघर्ष के दौरान मुझे एक भी चीनी कम्युनिस्ट नेता का नाम नहीं याद आ रहा, चाहे वह माओ–त्से–तुंग हों या कोई और, जिसने भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के समर्थन में एक शब्द भी कभी बोला हो। जबकि चीन के प्रतिक्रियावादी नेता चांग–काई–शेक ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत का पूरा साथ दिया और तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट के साथ मिलकर भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का भी समर्थन किया। मैं आपको यह बताना चाहता था कि कभी भी चीन के किसी कम्युनिस्ट नेता या उनके पूर्व शासक चीन में सांस्कृतिक क्रांति के जनक माओ–त्से–तुंग ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन नहीं किया। एक दूसरी बात मैं आपको और बताना चाहता हूं कि भारत और भारत के बाहर एक गलत धारणा यह बन गई है कि चीन में शिशु वध पर मौन रहने वाले नेहरू प्रगतिशील नेता हैं, जबकि तिब्बत में स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन करने वाले सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और राजगोपालाचारी जैसे लोग पिछड़ी मानसिकता वाले नेता हैं। यह गलत धारणा विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा फैलाई गई है। जबकि हर कोई जानता है कि भारत माता के इन प्रसिद्ध सपूतों की तिब्बत आंदोलन के समर्थन के लिए दलाई लामा ने भी तारीफ की है। मैं समझता हूं कि आप सब मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि तिब्बत स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन करने के मसले पर जवाहर लाल नेहरू पिछड़ी मानसिकता वाले साबित हुए,

जबकि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. राममनोहर लोहिया और सरदार वल्लभ भाई पटेल प्रगतिशील। मेरे दिमाग में इस बात के लिए कोई संदेह नहीं है और मेरी कामना है कि आपके मन में भी इसे लेकर कोई संदेह न रहे। इसकी वजह यह है कि यदि आप इस पर ध्यान नहीं देंगे और सावधानी नहीं बरतेंगे तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा फैलाई गई यह गलत धरणा हम पर हावी हो जाएगी। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि जब चाउ–एन–लाई (मेरे ख्याल से उन्होंने हिंदी–चीनी, भाई–भाई आंदोलन के दौरान कम से कम दो बार भारत का दौरा किया था) भारत आए थे तो वे सबके अलावा नगालैंड के भी एक आदमी से मिले और उसे बताया कि आप भी मंगोलियाई हैं, हम लोगों में साझा संबंध है। मैं समझता हूं कि यहां जो लोग भी उपस्थित हैं वह मंगोलियाई, आर्य, एशियाई आदि किसी भी तरह के मिथकों में विश्वास नहीं करते हैं। यदि हम इन गलत धरणाओं पर विश्वास न करें तो तिब्बत की सेवा करेंगे और इन धारणाओं के आगे सिर भी नहीं झुकाएंगे। मैं आपको बताना चाहता हूं कि प्राचीन ग्रंथों में एक शब्द है 'जम्बूद्वीप' जिसमें थाइलैंड, लाओस, कंबोडिया, वियतनाम, बर्मा, मलय, तिब्बत और हिमालयी क्षेत्र भूटान एवं सिक्किम भी शामिल थे। इन लोगों का चीन के हान या मांचू जनजातियों से कोई संबंध नहीं था लेकिन इनका भारत के साथ गहरा सांस्कृतिक जुड़ाव था और हम इतिहास के तथ्यों को जाने बिना, यह जाने बिना ही कि किस प्रकार दस्तावेज बने और अनुसंधान किए गए, अनजाने में ही यह दावा करते हैं कि यह सब मिथक हैं। यदि हम इन भ्रमों के आगे सिर झुका देंगे तो हम तिब्बत के स्वत्रंतता आंदोलन से आंख मूंद लेंगे। हमें इस बारे में सावधान रहना चाहिए क्योंकि मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि जहां तक भारत और तिब्बत के बीच सांस्कृतिक संबंध का सवाल है, हमारा मानना है कि यह संबंध सात बिंदुओं पर आधारित है– 1. भाषा, 2. लिपि, 3. जीवन पद्धति, 4. धर्म, 5. इतिहास, 6. भूमि का घेरा और 7. लोग। इन सात बिंदुओं पर हमें यह जरूर जानना चाहिए और अनुमान करना चाहिए कि भारत एवं तिब्बत के बीच संबंध युगों पुराने हैं और कोई भी कृत्रिम सीमा हमें तिब्बत से संबंध बनाने से रोक नहीं सकती। मैं चीनियों को एक चीज और बताना चाहूंगा कि भारोपीय भाषाओं में एशिया शब्द चीनी या किसी अन्य भाषा से नहीं बल्कि भारतीय शब्द उषा से लिया गया है जिसका मतलब होता है उगते सूरज की भूमि या पूर्वी भूमि। एक समय तो हमारे पूर्वजों ने वर्तमान चीनियों की जनसंख्या वाले भूमि को एशिया

नाम देकर महान कार्य किया था। जहां तक भारत–चीन के बीच संबंधों का सवाल है यह सब नाम और नामावली ने इसमें बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चीनियों ने हमें बताया कि माउंट एवरेस्ट एक अंग्रेजी नाम है और अंग्रेजी नामवाली में होने के कारण उसका अर्थ भारत या नेपाल से जुड़ा नहीं है। लेकिन नेपाल में इसका स्थानीय नाम सागरमाथा रखा गया है। दुभार्ग्य से हमने चीनियों का यह तर्क स्वीकार नहीं किया और अंग्रेजी नामावली का ही उपयोग कर रहे हैं। मैं आपको यह बताना चाहूंगा कि जहां तक भारत एवं चीन के बीच सांस्कृतिक संबंध की बात है महान कवि कालिदास ने अपने संस्कृत ग्रंथ कुमार संभव में लिखा हैः

अस्त्य उत्तरस्याम दिशे देवतात्मा हिमालयो नमा नागाधिराजह

पूर्वापरौ तोयानिधि वाघ्य अस्थिथ इवा मनादंदह

कवि कालिदास हिमालय को पर्वतों का राजा और दिशाओं की आत्मा बताते हैं और इसे पूर्वी और पश्चिमी महासागर के बीच स्थित बताते हैं। मैं चीन के लोगों को चुनौती देता हूं कि वह अपने प्राचीन ग्रंथों में हिमालय के बारे में एक भी उद्धरण खोज कर दिखा दें। इस प्रकार आप मुझसे सहमत होंगे कि यदि कोई चीनी विद्वान अपने प्राचीन साहित्य में इससे आधा सुंदर भी उद्धरण खोज कर दिखा दे तो हम तिब्बत के बारे में कुछ नहीं बोलेंगे। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि जहां तक सांस्कृतिक विरासत और सांस्कृतिक दृष्टांतों का संबंध है हमारे पास यह साबित करने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि भारत और तिब्बत के बीच सांस्कृतिक संबंध बहुत गहरा है और कोई भी कृत्रिम अवरोध हमें रोक नहीं सकता। अंत में मैं आपको यह बताना चाहूंगा कि तिब्बतियों के अधिकारों के लिए लड़ने वाले पहले भारतीय मेरे ख्याल से स्वर्गीय डॉ. राममनोहर लोहिया थे जिन्होंने 1949 के महत्वपूर्ण दिनों के दौरान लंदन में एक संवाददाता सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा था कि तिब्बत पर कब्जा करके चीनी लोगों ने शिशु वध जैसा अपराध किया है और भारत की जवाहर लाल नेहरू सरकार की भी इसमें मौन सहमति है। उस समय कृष्णा मेनन लंदन में भारत के उच्चायुक्त थे और उन्होंने निश्चित रूप से पंडित नेहरू को इस बारे में बताया होगा क्योंकि इसके बाद ही डॉ. लोहिया के चरित्र हनन का प्रयास शुरू हो गया। तिब्बती जनता की लड़ाई लड़ने वाले पहले भारतीय योद्धा के प्रति हम सब पर कृतज्ञता का बहुत बड़ा कर्ज है। मैं डॉ. लोहिया के भाषण से ही अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा और मैं

समझता हूं कि यह सबसे उपयुक्त कथन है जो आपको बताना चाहूंगा ताकि आप तिब्बत की आजादी के बारे में सोचने को प्रेरित हों। उन्होंने कहा थाः "मुझे उम्मीद है भारत के ताकतवर और शांतिप्रिय लोग एक दिन चीन के ताकवर और शांतिप्रिय लोगों को इस बात के लिए राजी करने में सक्षम हो जाएंगे कि वे तिब्बत की आजादी को स्वीकार करें।"

(अंग्रेजी से अनूदित)

जॉर्ज फर्नांडीज

(संसद सदस्य और समता पार्टी के नेता)

तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर नई दिल्ली में 12–14 अगस्त, 1989 को आयोजित अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में दिया गया भाषण

इस ऐतिहासिक अवसर पर मैं अपने बीच निजलिंगप्पा जी को पाकर गौरवान्वित और सम्मानित महसूस कर रहा हूं जो अपनी 87 साल की अवस्था को धता बताते हुए काफी कम उम्र के लग रहे हैं। वह मेरा निमंत्रण स्वीकार करने वाले पहले लोगों में से हैं और उन्होंने इस सम्मेलन का उद्घाटन करना भी स्वीकार किया। वह परसों बंगलौर से यहां हवाई जहाज से सिर्फ और विशेष रूप से हमारे सम्मेलन में शामिल होने के लिए ही आए। यहां उनका और कोई काम नहीं था। निजलिंगप्पा जी ने 65 साल से अधिक समय तक का सार्वजनिक जीवन बिताया है और महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले भारत के महान स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल अब तक बचे कुछ सेनानियों में से एक हैं। वह एक वकील, सांसद, संविधन सभा के सदस्य, दो बार कर्नाटक के मुख्यमंत्री और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके हैं। वह स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कई साल तक जेल में भी बंद रहे। इस सम्मेलन के उद्घाटन के लिए भला उनसे ज्यादा योग्य व्यक्ति और कौन हो सकता था? जब मैने ज्ञानी ज़ैल सिंह जी से मिलकर उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता करने का अनुरोध किया तो मुझे यह पता चला कि आज सुबह का उनका समय हरियाणा में एक दूसरे कार्यक्रम के लिए निर्धारित हो चुका है। लेकिन उन्होंने बिना किसी संशय के एक क्षण गवाएं यह कहा कि किसी भी अन्य कार्यक्रम की जगह तिब्बती लोगों के आंदोलन को प्रमुखता दी जानी चाहिए। एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में ज्ञानी जी को हमारे स्वतंत्रता संग्राम के दो महान सपूतों सरदार भगत सिंह और नेताजी सुभाष चंद्र बोस से प्रेरणा मिली और उन्होंने काफी समय तक जेल की सजा भी भोगी। पंजाब में

विधायक और पूर्व मुख्यमंत्री के रूप में उन्हें काफी लंबा राजनीतिक अनुभव है। ज्ञानी जी ज्ञान और पांडित्य से भरे आदमी हैं और इस सम्मेलन में हुआ उनका भाषण उनके ज्ञान और पांडित्य का पर्याप्त प्रमाण है। भारत के एक पूर्व राष्ट्रपति के रूप में इस सम्मेलन में उनकी उपस्थिति ने इसे एक ऐसी मान्यता दी है जो और बहुत कम लोगों से मिल पाती। हम तिब्बतियों को समर्थन देने और उनके प्रति चिंता जताने के लिए ज्ञानी जी के प्रति कृतज्ञ हैं। तिब्बत और दक्षिण एशिया में शांति विषय पर आयोजित इस सम्मेलन का उद्देश्य दुनिया को तिब्बतियों की दशा की याद दिलाना है जो अब भी अपनी राष्ट्रीय पहचान हासिल करने और अपने देश की आजादी के लिए साहसपूर्ण संघर्ष कर रहे हैं। इस सम्मेलन का उद्देश्य तिब्बती लोगों को यह भरोसा दिलाना भी है कि उनके आंदोलन का दुनिया भर में समर्थन करने वाले बहुत लोग हैं और एक आजाद एवं मुक्त तिब्बत के उनके लक्ष्य को पाने के लिए ये लोग अपनी पूरी ताकत से उन्हें समर्थन देंगे। इसके पहले 9 से 11 अप्रैल 1960 तक जयप्रकाश नारायण द्वारा गठित एक समिति द्वारा तिब्बत और एशिया एवं अफ्रीका में उपनिवेशवाद के विरोध में दिल्ली में आयोजित सम्मेलन का भी यही उद्देश्य था। उस सम्मेलन में पारित प्रस्ताव में कहा गया थाः "यह मानते हुए कि मानवोचित स्वभाव को नियंत्रित करने और स्वतंत्रता को समाप्त करने के सभी प्रयासों का दृढ़तापूर्वक और निरंतर विरोध करना चाहिए और तिब्बतियों के स्वयं शासन के अधिकार को स्वीकार करते हुए यह सम्मेलन तिब्बतियों के आत्मनिर्धारण के अधिकार का समर्थन करता है और इसकी मांग करता है। तिब्बती लोग तभी स्वतंत्रता से इसका उपभोग कर सकते हैं जब तिब्बत पर कब्जा जमाई हुई चीनी सेनाएं और 1950 के बाद वहां बसाए गए चीनी नागरिकों को वहां से हटा लिया जाए। यह तिब्बती लोगों की इच्छा पर छोड़ देना चाहिए कि वह पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं या कोई अन्य राजनीतिक स्वरूप। यह सम्मेलन दुनिया के सभी स्वतंत्रता प्रेमी लोगों से अनुरोध करता है कि वह शांतिपूर्ण तरीके से तिब्बती आंदोलन का समर्थन करें और इसे साकार रूप दिलाने के लिए दृढ़तापूर्वक काम करें।"

इन शब्दों ने जयप्रकाश नारायण की उस भावना को अच्छी तरह से अभिव्यक्ति दी है जो उन्होंने सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा था, "मुझे उम्मीद है कि यह सम्मेलन तिब्बती जनता की आजादी और आत्मनिर्धारण के अधिकार की साफ–साफ घोषणा करेगा और सभी देशों

से सविनय यह अनुरोध करेगा कि वह तिब्बती स्वतंत्रता आंदालेन को अपने नैतिक और राजनीतिक समर्थन दें।"

जर्मनी संघीय गणराज्य के नेताओं सुश्री पेट्रा केली और जनरल बास्टियन द्वारा बोन में आयोजित पहली अंतरराष्ट्रीय सुनवाई में यह घोषणापत्र स्वीकार किया गया, "हम तिब्बत की स्वतंत्रता और इस स्वतंत्रता के उपभोग का तिब्बती जनता के अधिकार के प्रति अपनी निष्ठा को फिर दुहराते हैं और चीन जनवादी गणतंत्र के लोगों से आह्वान करते हैं कि वह 1961 के संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्ताव संख्या 1723 के अनुरूप तिब्बती जनता द्वारा बिना किसी विदेशी दखल के खुद अपने भविष्य के निर्धारण के अधिकार का सम्मान करे और तिब्बती लोगों को स्वतंत्रता, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं और प्रेस से खुलकर मिलने दे।"

दिल्ली में दिसंबर 1962 में आयोजित पहले हिमालय बचाओ सम्मेलन (सेव द हिमालयाज कांफ्रेंस) में भी डॉ. राममनोहर लोहिया द्वारा तैयार एक व्यक्तिगत वचन पेश किया गया, "भारत सरकार कुछ भी करे, मैं निरंतर इस बात के लिए प्रयास करता रहूंगा कि भारत को 15 अगस्त 1947 की सीमा फिर से मिले और तिब्बत एवं शेष हिमालय को उसकी आजादी।" इस वचन को फिर 20 फरवरी 1989 को दिल्ली में आयोजित हिमालय बचाओ सम्मेलन में शामिल प्रतिभागियों द्वारा दुहराया गया। मेरा यह मानना है कि माओ की क्रांति के बाद जब भारत एक ऐतिहासिक मोड़ पर तिब्बत का साथ देने में असफल रहा तभी यह स्पष्ट हो गया कि चीनी लोग तिब्बत पर कब्जा कर लेंगे। उस असफलता (मैं इसे बड़ी असफलता मानता हूं) का विनाशकारी परिणाम हुआ, न केवल तिब्बत की जनता के लिए बल्कि भारत के लोगों के लिए भी। इससे चीनी सेना पहली बार भारतीय सीमा के करीब पहुंच गई और इसके बाद का परिणाम हम जानते हैं। क्या यह हमारा विश्वासघात था या कायरता थी या भोलापन था या इन सबके मेल से हमने तिब्बत के प्रति विश्वासघात किया, इस बात की जानकारी कभी भी नहीं हो पाएगी। चीनी सेना द्वारा तिब्बत पर चढ़ाई के बाद 7 नवंबर 1950 को प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को भेजे गए पत्र में तत्कालीन उप प्रधानमंत्री और गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने लिखा था: "चीन सरकार ने शांतिपूर्ण इरादे की आड़ में धोखा देने का प्रयास किया है। व्यक्तिगत रूप से मेरा यह मानना है कि ऐसे महत्वपूर्ण समय में वे हमारे राजदूत के दिमाग में अपने तथाकथित इच्छा

के बारे में यह झूठा विश्वास बनाने में कामयाब रहे कि वे तिब्बती समस्या का समाधन शांतिपूर्ण तरीके से करना चाहते हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जब तक यह पत्र आपको मिलता है चीनी सेना तिब्बत पर हमले की तैयारी कर रही होगी। मेरा निर्णय तो यही है कि चीन ने जो कार्य किया है उसे विश्वासघात से कम नहीं माना जा सकता है। इस पर भी त्रासदी यह है कि तिब्बती लोग हम पर विश्वास करते रहें, उन्होंने अपने मार्गदर्शन के लिए हमें चुना है, लेकिन हम उन्हें चीनी कूटनीति के शिकंजे से मुक्त कराने में असमर्थ रहे।"

तिब्बत पर चीनी कब्जे के तत्काल बाद 7 दिसंबर 1950 को प्रधानमंत्री नेहरू ने भारतीय संसद में घोषणा कीः "तिब्बत चीन के जैसा नहीं है, इसलिए अंत में तिब्बत की जनता की इच्छा का ही पालन किया जाना चाहिए और इसके बारे में कोई कानूनी या संवैधानिक तर्क नहीं होना चाहिए।" इसके बाद उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहाः "सिद्धांतों के अनुसार मैं यह अनुमोदित करता हूं कि तिब्बत के बारे में अंतिम आवाज तिब्बत की जनता की आवाज होनी चाहिए न कि किसी और की।"

अपनी मौत के सिर्फ तीन दिन पहले प्रधानमंत्री नेहरू ने तिब्बत के बारे में एक और खरा बयान दिया जिससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि तिब्बत पर उनके निर्णय पर किस बात का प्रभाव था। देहरादून में स्वास्थ्य लाभ कर रहे नेहरू की 27 मई 1964 को मौत हो गई थी, इसके पहले 24 मई को उन्होंने प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. गोपाल सिंह को लिखे पत्र में कहा थाः "मुझे यह समझ में नहीं आ रहा है कि वर्तमान परिस्थिति में हम तिब्बत के लिए क्या कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र में तिब्बत पर प्रस्ताव पारित करने का भी कोई मतलब नहीं होगा क्योंकि चीन उसका सदस्य नहीं है। तिब्बत में जो कुछ हुआ हम उससे उदासीन नहीं हैं। लेकिन हम इसके बारे में कुछ भी प्रभावी कदम नहीं उठा सकते।" चार पंक्तियों का यह पत्र सब कुछ बयान कर देता है। तिब्बत के बारे में अपनी नीति तैयार करने के मामले में भारत ने असहाय के भाव से काम किया। इस नीति को प्रभावित करने वाले कुछ और कारक रहे होंगे और थे भी। यह धारणा थी कि हम चीन से कमजोर हैं और इस धारणा ने हमें अच्छी तरह से जकड़ लिया था। नेहरू यह भूल गए थे कि तिब्बत पर चीनी कब्जे को मौन सहमति देकर उन्होंने चीन को एक ऐसा वैधानिक हथियार पकड़ा दिया जिसका अब चीन इस्तेमाल भी कर चुका है।

दो लोगों के व्यक्तिगत संबंधों के मामले में भी अगर गलती होती है तो उसे स्वीकार करने में देर नहीं करनी चाहिए लेकिन इस बात के लिए कोई वजह नहीं दिखता कि एक पूरे देश की स्वतंत्रता के मामले में भारत को यह साहस नहीं होना चाहिए था कि वह अपनी गलती स्वीकार करे। इस गलती को सुधारने के लिए भारत ने 1965 में एक कमजोर प्रयास किया। तिब्बत पर संयुक्त राष्ट्र महासभा में पेश एक प्रस्ताव पर बोलते हुए भारतीय प्रतिनिधि ने तिब्बती जनता की पीड़ा के बारे में बताया और कहाः ″हम सबको इस नंगी सचाई का सामना करना होगा कि चीन सरकार तिब्बत की जनता को मिटाने के लिए दृढ़संकल्प है।″ इसके बाद उन्होंने यह घोषणा करते हुए तिब्बतियों की आजादी के लिए समर्थन करने का आह्वान किया कि, ″किसी भी जनता का लंबे समय तक दमन नहीं किया जा सकता। मैं विश्व समुदाय में विश्वास करता हूं। मेरा मानना है कि इससे हमें तिब्बतियों को वह सब तरह की आजादी वापस करने में मदद मिलेगी जो संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणापत्र में इतने समर्पण के साथ संजोकर रखा है।″ लेकिन दुर्भाग्य से इस विश्वास और धरणा का कोई तार्किक परिणाम नहीं आया।

देशभक्त भारतीयों के लिए तिब्बत का प्रश्न सिर्फ तिब्बती जनता के अधिकार और उनके स्वतंत्रता संघर्ष की चिंता ही नहीं है। तिब्बत के साथ भारत का जुड़ाव लिखित इतिहास से भी पुराना है। शुरुआती तिब्बती इतिहासकारों ने तिब्बत के राजाओं की उत्पत्ति को एक अर्द्ध दैवी व्यक्तित्व न्यात्री त्सेन–पो के 36 पीढ़ियों के माध्यम से बताया है। इनके बाद भी देवताओं की प्रतिछाया वाले व्यक्तित्व शासन करते रहे। इसके बाद बौद्ध इतिहासकारों ने बताया कि तिब्बत के पहले राजा के पूर्वज भारतीय थे जो संभवतः पांडवों या गौतम बुद्ध के वंशज थे। हालांकि इन दोनों का समय इतना पुराना है कि अविश्वसनीय लग सकता है लेकिन यह असंभव नहीं है कि कुछ साहसी योद्धाओं ने हिमालय को पार किया हो और वे तिब्बती क्लान लोगों के मुखिया बन गए हों। तिब्बती और भारतीय लोग एक ही पूर्वज से जुड़े हों या न जुड़े हों लेकिन धर्म और संस्कृति ने उन्हें भारत के साथ लिखित इतिहास से भी पहले से जोड़ कर रखा है। तिब्बती लिपि का जन्म भारतीय वर्णमाला से हुआ है और हिंदुओं के दो सबसे पवित्र तीर्थ–भगवान शिव का निवास कैलाश और स्वर्ग माना जाने वाला मानसरोवर तिब्बत में ही स्थित है।

जबकि पिछले तेरह सौ वर्षों के दौरान तिब्बती राजा और योद्धा चीन

के साथ युद्ध में लगे रहे। कई बार तिब्बतियों ने चीन को पराजित भी किया और अपनी विजय की खुशी में चीनी राजकुमारियों से शादी की। भारत के साथ तिब्बत का संबंध मुख्यतः संस्कृति और शिक्षण से संबंधित था। तिब्बती विद्वान और धर्मिक गुरू ज्ञान प्राप्ति के लिए भारत के बौद्ध विश्वविद्यालयों में आते थे। चीन द्वारा भ्रांति फैलाने के तमाम प्रयासों के बावजूद वह इस ऐतिहासिक तथ्य को झुठला नहीं सकता कि 1950 में चीनी सेना के कूच करने से पहले तिब्बत एक स्वतंत्र देश था। पहली बात तो यह है कि, चीन में आई साम्यवादी क्रांति तिब्बत की जनता पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका, अपने सभी विजयों और लांग मार्च सहित अपने दो दशकों से अधिक के दुखद कहानी के बावजूद। दूसरी बात यह है कि, जनवरी 1950 में आकर ही चीन ने दावा किया कि तिब्बत चीन जनवादी गणतंत्र का हिस्सा है और उसने ल्हासा से कहा कि वह बातचीत के लिए एक प्रतिनिधिमंडल ल्हासा भेजे। तीसरी बात, भारत सरकार की तिब्बत में अपनी सेना नहीं भेजने का घोषणा के बाद, चीन सरकार से यह अनुरोध किया कि वह तिब्बत के मामले में संयम बरते, तब बीजिंग ने भारत को बताया कि चल रही बातचीत के बाद कोई समझौता हो जाएगा। चौथी बात, तिब्बती प्रतिनिधिमंडल पहले चीन नहीं गया बल्कि सबसे पहले वह अप्रैल में भारत आया। भारत आने पर इस प्रतिनिधिमंडल के नेता ने कहा, ”हम चाहते हैं कि हमें अपना जीवन जीने के लिए अकेला छोड़ दिया जाए।“ पांचवीं बात, गर्मियों के समय तिब्बती प्रतिनिधिमंडल और चीनी कम्युनिस्ट नेताओं के बीच बातचीत शुरू हुई जिसमें भारत ने मध्यस्थ की भूमिका निभाई। छठीं बात, 23 अक्टूबर को नई दिल्ली में यह घोषणा की गई कि तिब्बती प्रतिनिधिमंडल बीजिंग में सम्मेलन में शामिल होने के लिए भारत से जा रहा है। सातवीं बात, 24 अक्टूबर को रेडियो पीकिंग ने घोषणा कीः ”पीपुल्स आर्मी के दस्तों को तिब्बत में इसलिए भेजा गया है ताकि तिब्बतियों को साम्राज्यवादी आक्रमण से बचाया जा सके और चीन की पश्चिमी सीमा पर राष्ट्रीय सुरक्षा को ठोस रूप दिया जा सके।“

इनमें से किसी भी बिंदु को मैंने विस्तार से नहीं बताया। इनमें से हर बिंदु पर काफी समय तक चर्चा की जा सकती है लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि मैंने जिन सात बिंदुओं की चर्चा की है आप उसका अभिप्राय समझ गए होंगे। इन सभी घटनाओं से यह बात बहुत साफ और प्रभावी तरीके से मालूम होती है कि जब चीनियों ने तिब्बत पर पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के जवानों को हमला करने के लिए छोड़ दिया था तब तिब्बत एक स्वतंत्र

देश था। उक्त तथ्यों और अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में दुनिया की कोई भी ताकत यदि यह दावा करती है कि तिब्बत पर चीन का अधिकार है तो वह राष्ट्र राज्य की प्रचलित धारणा के विपरीत जाता है और इस विकृत साम्राज्यवादी विचार का अनुयायी है कि एक बड़े देश का अपने छोटे और निसहाय पड़ोसियों पर आधिपत्य होता है। दुनिया के इतिहास में तिब्बत की स्वतंत्रत स्थिति भारत और उसकी सुरक्षा के लिए भी खास औचित्य रखती है। इसका विशाल परिधि भारत के करीब 12,61,000 वर्ग मील के आधे से थोड़ा ही कम है। यह तीन महान एशियाई ताकतों–चीन, भारत और सोवियत रूस के बीच एक पूरी तरह बफर देश के रूप में है। हालांकि परमाणु बम और अंतर महाद्वीपीय बैलिस्टिक मिसाइलों ने इस बफर देश की अवधारणा को एक नया अर्थ दिया है। तिब्बती भूमि पर परमाणु बम से लैस चीनी अंतर महाद्वीपीय मिसाइलों की उपस्थिति यह साबित करने के लिए काफी है कि भारत की रक्षा और सुरक्षा के लिए तिब्बत अभी भी महत्वपूर्ण है।

भारतीय नेताओं में से सबसे पहले समाजवादी डॉ. राममनोहर लोहिया ने इस बारे में चेताया था कि तिब्बत पर चीनी कब्जे का भारत पर क्या असर पड़ने वाला है। क्रांति की विजय के तत्काल बाद जब चीनी कम्युनिस्टों ने उत्तर–पूर्वी तिब्बत के आमदो प्रांत में अपनी सेनाएं भेज दीं और युद्ध ग्रस्त दुनिया और नवस्वतंत्र भारत के बीच 'प्रभुसत्ता' और 'अधिराज' जैसे शब्दों के अलग–अलग अर्थ पर बहस छिड़ गई, तो डॉ. लोहिया ने ही लंदन में 1949 में आयोजित संवाददाता सम्मेलन में अडिग रूप से यह कहा कि तिब्बत एक स्वतंत्र देश था और भारतीय गणराज्य के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व वाले भारतीय गणराज्य को यह कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए और तिब्बत को आजाद कराने के लिए लग जाना चाहिए। तिब्बत को चीन के हाथों में देकर प्रधानमंत्री नेहरू ने यह दिखाया कि उनके अंदर दिलेरी की कमी है और भारत के सुरक्षा संबंधी हितों की समझ नहीं है। इसके बाद जो कुछ हुआ, वह चीन के घमंड और आक्रामकता, भारत की कायरता और समर्पण का एक अध्याय था और इसके परिणामस्वरूप अक्टूबर 1950 में चीनी कम्युनिस्टों ने तिब्बती लोगों की हत्या की। चीनियों ने तिब्बत में जो कुछ किया वह वास्तविक अर्थों में एक शिशु वध ही था। दुनिया ने चीनियों द्वारा तिब्बत में जबरन भ्रूणहत्या, नसबंदी और नवजात शिशुओं की हत्या की घटनाओं की भरमार देखी, इसके अलावा तिब्बत में बड़े पैमाने पर चीनी (हान)

लोगों को बसाया गया। यह सब स्पष्ट रूप से तिब्बतियों की पहचान मिटा देने की नीति के तहत किया गया। तिब्बतियों के मानवाधिकारों का जिस तरह से लगातार उल्लंघन हो रहा है वैसा उदाहरण दुनिया में बहुत कम देखने को मिलता है। बीजिंग में थियानमेन चौक पर विरोध कर रहे चीनी विद्यार्थियों का पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के जवानों ने नरसंहार किया और पूरी दुनिया देखती रही, तो आप कल्पना कर सकते हैं कि पिछले चार दशकों से चीनियों के कब्जे वाले तिब्बत में किस तरह के अत्याचार किए गए होंगे। बहुत लोग यह भी मानते हैं कि अब तिब्बत की आजादी के बारे में सोचने में बहुत देर हो गई है। यह उस श्रेणी के लोग हैं जिन्हें अपने आप पर विश्वास नहीं रह गया है और उन्होंने मानव के अजेय प्रकृति को कभी भी नहीं समझा है। उनके लिए इतिहास उसी तरह से स्थिर है जैसे कि हिमालय स्थिर दिखता है, जबकि कई युगों में हिमालय का लगातार विकास हो रहा है और वह बदल भी रहा है। उनके लिए थियानमेन चौक पर प्रदर्शन समझ से बाहर है और उन्हें सोवियत संघ के कई गणराज्यों में स्वतंत्र पहचान के लिए चल रहे जनआंदोलन भी नहीं दिखाई देता।

इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन को उन सभी लोगों के अंतःकरण को जगाने का प्रयास करना चाहिए जो यह स्वीकार कर चुके हैं, तिब्बत पर चीन का कब्जा इतिहास का न बदल सकने वाला तथ्य है, विशेषकर ऐसी सरकारों को जो यह मानते हैं कि तिब्बती लोगों के मानवाधिकार और एक अरब लोगों के बाजार से मिल सकने वाली संभावनाओं और अवसरों में धन को प्राथमिकता देनी चाहिए। दलाई लामा ने अपने बुद्धिमत्ता और दूरदृष्टि का उपयोग करते हुए तिब्बत की समस्या के हल के लिए एक पांच सूत्रीय शांति योजना तैयार की है। इन पांच सूत्रों को दुनिया भर के पार्लियामेंट और सांसदों का समर्थन मिला है। भारत में भी कांग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट पार्टी तक, लगभग सभी पार्टियों के सांसदों ने लोकसभा के अध्यक्ष को एक संयुक्त ज्ञापन देकर इस योजना का समर्थन किया है। हमारे इस सम्मेलन को भी चीन जनवादी गणतंत्र की सरकार से आह्वान करना चाहिए कि वह इस शांति योजना पर सकारात्मक रूप से कार्य करे और लगातार जारी गतिरोध को दूर करने का कोई मित्रवत रास्ता निकाले। भारत सरकार को भी इस तरह की शांति योजना को आगे बढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए, विशेषकर यह देखते हुए कि हर राजनीतिक दल इसका समर्थन कर रहा है। यदि तिब्बत को एक शांति क्षेत्र बना

दिया जाए, चीनी सेनाओं और परमाणु हथियारों से मुक्त कर दिया जाए तो भारत सरकार को हिमालय की ऊंची चोटियों पर बड़े पैमाने पर सेना रखने की जरूरत नहीं होगी। इससे भारत एवं चीन तत्काल अपने सैन्य खर्चों में कटौती कर सकेंगे और इससे बचे हुए धन को आर्थिक विकास में लगा सकेंगे। यूरोप के देश अपनी सेनाओं में कटौती कर रहे हैं और उनका सैन्य खर्च भी घट रहा है। भारत एवं चीन भी इसी रास्ते पर क्यों नहीं चल सकते? मैं एक क्षण के लिए भी यह नहीं चाहूंगा कि सरकार को जिन कठिनाइयों में काम करना पड़ता है उसे नजरअंदाज कर दिया जाए। लेकिन सरकारों से भी आगे और उनसे ऊपर इस दुनिया की जनता है। कई बार महत्वपूर्ण मसलों पर जनता की राय अपने सरकार से भिन्न भी होती है। जब अमेरिकी सरकार ने वियतनाम में खून–खराबा से भरा युद्ध जारी रखने का निर्णय लिया तो अमेरिकी लोग अपने सरकार से लड़ने के लिए तैयार हो गए और आखिरकार अमेरिका को वियतनाम से अपनी सेना हटानी पड़ी। पोलैंड की जनता ने एकजुट होकर लोकतंत्र बहाली के लिए आंदोलन शुरू किया जिसका वहां की सरकार द्वारा दमन किया गया, क्योंकि सरकार का इस बारे में मत अलग था कि देश को कैसे चलाया जाए, लेकिन आखिरकार सरकार को जनता से हार माननी पड़ी। असल बात यह है कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मसलों पर हमेश जनता की नीति होनी चाहिए और हमारा यह प्रयास होना चाहिए कि भारत में भी तिब्बत के बारे में एक जन नीति तैयार की जाए और उस पर जोर दिया जाए। भारत में इस प्रकार की जन नीति में लगातार इस बात को दुहराना चाहिए कि सियाचन के निकट 14,500 वर्ग मील की वह जमीन फिर से हासिल किया जाए जिस पर चीन ने अवैध कब्जा किया है। भारत को दक्षिण एशिया में इस तरह प्रतिरोध आंदोलन का अगुवा होना चाहिए कि हथियारों की खरीद पर रोक लगाई जाए और सेनाओं और हथियारों में कटौती की जाए। सभी दक्षिण एशियाई देशों में परमाणु हथियारों के परीक्षण सहित सभी तरह के परमाणु हथियारों समाप्त करने का संकल्प लेना चाहिए।

दक्षिण एशिया के देशों की सीमाएं इतिहास के दुखद परिस्थितियों से बनी हैं, लेकिन यह देश भाषा, धर्म और संस्कृति के रूप में पांच हजार वर्षों के साझा विरासत से जुड़े हैं। यूरोप और दुनिया के अन्य हिस्सों में बदलाव की बयार चली लेकिन दक्षिण एशिया के देश इससे न केवल अछूते रहे बल्कि उनके बीच आपस में तनाव भी बढ़ता रहा। भारत, पाकिस्तान,

बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल का रक्षा बजट इतना ज्यादा है कि वहां के लोग इसे वहन नहीं कर सकते। इसका नतीजा यह है कि जो दुर्लभ संसाधन उनकी जनता को भोजन, कपड़े और मकान देने में लगने चाहिए थे वे हथियारों की होड़ में बरबाद हो रहे है, जिसका लाभ केवल दुनिया में हथियार उत्पादक देश ही उठा रहे हैं। यदि तिब्बत से पूरी तरह सेना हटा ली जाए और भारत एवं चीन मित्र की तरह रहें तो दक्षिण एशिया में भारी बदलाव आ सकता है। इससे इस क्षेत्र में तनाव तो कम होगा ही लोगों के जीवन को भी बेहतर बनाया जा सकेगा। लेकिन जब आप थियानमेन चौक की दुखद घटना को याद करते हैं तो यह सब आपको पवित्र और अभिलाषा कल्पित चिंतन लग सकता है। यह सच है कि जब रूस सहित पूर्वी यूरोप में साम्यवाद एक मानवीय चेहरा और मानवीय दर्शन हासिल करने का प्रयास कर रहा है, इसने चीन में अपना बर्बरतम रूप दिखाया है। चीनी नेतृत्व के घमंड का कारण उनका यह मानना है कि वे संख्या के मामले में वे किसी को भी हरा सकते हैं। माओ ने इसे कई बार कहा था जब उन्होंने यह दृष्टिकोण पेश किया कि जब पूरी दुनिया तबाह हो चुकी है तब भी चीन परमाुण बम की बलि चढ़ने से बच गया और अपना पुनर्निर्माण कर रहा है। चीनी नेतृत्व का यह भी मानना है कि उसकी सरकार चाहे कितनी भी दमनकारी हो दुनिया के ताकवर औद्योगीकृत और धनी देश मुनाफा कमाने के लिए उसके साथ कारोबार करते रहेंगे और ल्हासा या थियानमेन के पीड़ितों के साथ जबानी सहान.ूभूति जताते रहेंगे। निश्चित रूप से चीन बड़ा है और उसकी जनसंख्या अब एक अरब 10 करोड़ को पार कर चुकी है। लेकिन भारत भी तो एक बड़ा देश है जिसकी जनसंख्या करीब 81 करोड़ तक पहुंच चुकी है। हर ग्यारह चीनी नागरिकों की तुलना में आठ भारतीय हैं और यह कोई ऐसा असंतुलित अुनपात भी नहीं है जैसा कि कुछ लोग सोच सकते हैं। जी नहीं, मैं चीन के साथ युद्ध करने की वकालत नहीं कर रहा हूं, अभी या कभी भी। लेकिन भारत सरकार को चीन को यह बताना पड़ेगा कि दो शांतिपूर्ण पड़ोसियों की भांति रहने के लिए हमें पहले अपने विवादास्पद मसलों को हल करना पड़ेगा। 24 अक्टूबर 1962 को भारत के महान सपूत और देश के पहले राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने पटना के प्रसिद्ध गांधी मैदान में जनता को संबोधित करते हुए कहा थाः "आजादी सबसे पवित्र वरदान है। हर तरह से इसकी रक्षा करनी चाहिए...तिब्बत को चीन के लौह शिकंजे से मुक्ति दिला कर तिब्बती लोगों को सौंप देना चाहिए।" तिब्बत

की स्वतंत्रता और निष्पक्षता भारत की सुरक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और इससे चीन के हित को भी कोई नुकसान नहीं होने वाला। केवल एक मजबूत और संगठित भारत ही चीनियों को यह बात समझा सकता है। कायरता को मजबूर लोग, जिसमें कुछ सभ्रांत लोग खुलेआम तड़क–भड़क वाला जीवन जी रहे हों और बड़ी जनसंख्या दरिद्रता और दुर्भाग्य में जी रही हो, चीन के सामने कभी भी खड़ी नहीं होगी और निश्चित रूप से कमजोर विकल्प ही चुनेगी। भारतीय जनता को एक ऐसा नेतृत्व सामने लाने में देर नहीं करनी चाहिए जो एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था के द्वारा एक मजबूत और कल्याणकारी देश बनाए। इस प्रकार का भारत चीन के साथ मुद्दों को सुलझा सकेगा और न केवल अपनी जमीन वापस ले सकेगा बल्कि तिब्बत को चीन के सामने सौंपने की पिछली पीढ़ी की गलती को सुधार सकेगा।

(अंग्रेजी से अनूदित)

लालकृष्ण आडवाणी

(भारत के पूर्व उप प्रधानमंत्री)

तिब्बत समर्थक समूहों के छठे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में श्री का भाषण

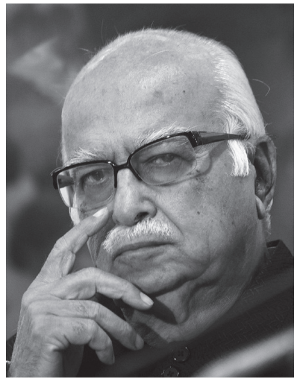

(सूरजकुंड, हरियाणा, शुक्रवार, 5 नवंबर, 2010)

तिब्बत समर्थक समूहों के इस छठे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के उद्‌घाटन का आमत्रंण पाकर मुझे खुशी हुई है। वास्तव में परमपावन दलाई लामा के साथ एक मंच पर बैठना मेरे लिए एक सम्मान और सौभाग्य की बात है।

इस सम्मेलन के आयोजन के लिए मैं तिब्बत समर्थक समूहों को बधाई देता हूं।

परमपावन दलाई लामा न केवल तिब्बत की जनता के आध्यात्मिक नेता हैं, बल्कि वह दुनिया के एक महान जीवित आध्यात्मिक प्रकाश हैं। वह बुद्धत्व के महानतम व्याख्याता हैं। लेकिन उनका बुधत्व अकादमिक नहीं बल्कि सजीव है।

बुद्ध की तरह ही वह अपनी परेशानी और संघर्ष में अपने दर्शन का पालन करते हैं। उनकी पीड़ा जनता की पीड़ा है। पिछले आधी सदी से ज्यादा समय से वह एक अहिंसक संघर्ष में लगे हैं जिसमें दृढ़ता, प्रचार और उनका अपना नैतिक व्यक्तित्व ही उनके हथियार हैं। यह तथ्य ही उनके महानता को प्रकट करता है।

हम भारत के लोग वास्वत में भाग्यशाली हैं कि हम परमपावन दलाई लामा और उनकी जनता के संघर्ष में अपना कुछ सहयोग कर पा रहे हैं। इस तरीके से हम भगवान बुद्ध द्वारा अपने उपर की गई कृतज्ञता रूपी कर्ज का कुछ हिस्सा चुका पा रहे हैं।

अपने लंबे इतिहास में भारत ने कभी भी अपनी सेनाओं को दूसरे देशों पर चढ़ाई करने और एक ''भारत साम्राज्य" स्थापित करने के लिए नहीं भेजा। मैं यहां प्रख्यात उदारवादी चीनी विद्वान और अमेरिका में चीन के राजदूत हु शिह (1891–1962) द्वारा भारतीय सभ्यता के सम्मान में कहे गए शब्दों को उदधृत करना चाहता हूं–"भारत ने सीमा पार एक सैनिक भेजे बिना भी करीब बीस शताब्दी से तिब्बत पर सांस्कृति रूप से विजय और प्रभुत्व कायम रखा है।"

भारतीय सभ्यता ने कई सताए हुए समुदायों को शरण दिया है। इनमें पारसी भी शामिल हैं जिन्हें अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी थी। वे अपने मातृभूमि लौट नहीं पाए क्योंकि उनके लिए मातृभूमि नहीं बची थी। उनके धर्म की लगभग हर चीज बर्बाद कर दी गई थी और वे फारस में तब ही वापस लौट सकते थे, जब अपने धर्म का पालन करना छोड़ दें। इस प्रकार उन्हें हमेशा के लिए भारत माता के ममतामयी आंचल को स्वीकार करना पड़ा।

लेकिन तिब्बत की जनता के साथ ऐसा मामला नहीं है। उनके पास अपनी मातृभूमि है जिसे वह बहुत प्यार करते हैं। वह उनके पूर्वजों की भूमि है। वह उनके बेहतरीन मठों की भूमि है। वह विपुल प्राकृतिक संपदा की भूमि है। वह उनकी पवित्र भूमि है।

इसके बावजूद कि उन्होंने तमाम अत्याचारों का सामना किया है और तिब्बत के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत को काफी हद तक विनष्ट कर दिया गया है– ऐसे ज्यादातर कार्य चीन के कुख्यात 'सांस्कृतिक क्रांति" के दौरान हुए), तिब्बत, तिब्बती जनता का मातृभूमि और पवित्र भूमि बना हुआ है।

इसलिए, मैं आशा और प्रार्थना करता हूं कि जल्दी ही एक दिन ऐसा आएगा जब परमपावन दलाई लामा और अन्य तिब्बती लोगों का जबरन निर्वासन खत्म होगा और वे अपनी मातृभूमि एवं पवित्र भूमि में सम्मान एवं गरिमामय तरीके से वापस लौट सकेंगें और इसके बाद तिब्बत के भविष्य का निर्माण करने में सक्षम होंगे।

मेरी पार्टी, पहले भारतीय जनसंघ और बाद में भारतीय जनता पार्टी हमेशा तिब्बती जनता की आंकाक्षा की समर्थक रही है। हम तिब्बती जनता द्वारा चुने हुए विकल्प का सम्मान करते हैं, जैसा कि परमपावन दलाई लामा ने कहा है कि तिब्बत, चीन जनवादी गणराज्य का एक स्वायत्तशासी

क्षेत्र है और वह वास्तविक आज़ादी नहीं बल्कि वास्तविक स्वायत्तता चाहते हैं।

कम्युनिस्ट चीन यह सोचता है कि परमपावन दलाई लामा और उनके समर्थकों को अपना सम्मानित अतिथि बनाकर भारत उसके आंतरिक मामलों में दखल दे रहा है। यह धारणा पूरी तरह से गलत है और उन गलतियों की अनदेखी है जो 1949 के बाद बीजिंग की कम्युनिस्ट सरकारों द्वारा की गई हैं।

भारत के पास चीन के आंतरिक मामलों में दखल देने की कोई वजह नहीं है। भारत ने कभी भी तिब्बत या चीन को अपनी सीमा में होने का दावा नहीं किया। भारत और चीन एक पड़ोसी देश हैं और ऐसी दो प्राचीन सभ्यताएं हैं जिनमें बहुत कुछ साझा है। दोनों के बीच यह साझा रिश्ता तिब्बती सभ्यता के माध्यम से बना है।

हजारों साल से हमारी यह दो सभ्यताएं तिब्बत के ऊंचे पर्वतों से जुदा रही हैं। तिब्बत में दुनिया के एक सबसे अनूठे सभ्यता का जन्म हुआ था। लेकिन अब इतिहास ने भारत और चीन की सीमा को साझा कर दिया है। नई ऐतिहासिक स्थिति में हम यह चाहते हैं कि तिब्बत, भारत एवं चीन के बीच एक सेतु का काम करे। तिब्बत सभ्यता का जिंदा रहना जो कि सांस्कृतिक एवं राजनीतिक रूप से स्वायत्त हो, वास्तव में चीन में कम्युनिस्ट शासन के खत्म होने के बाद फायदेमंद होगा। वास्तव में ऐसा लगता है कि तिब्बत के मसले को हल करने में सबसे बड़ी बाधा कम्युनिज्म का विचार और चीन में कम्युनिस्ट शासन ही है। एक लोकतांत्रिक चीन निश्चित रूप से तिब्बत और चीन, दोनों जगह की जनता के लिए अच्छा रहेगा।

नवंबर, 2006 में जब चीनी राष्ट्रपति श्री हू जिनताओ नई दिल्ली आए थे तो उनसे मुलाकात के दौरान मैंने उनके सामने यह उम्मीद जाहिर की थी कि चीन सरकार ऐसी दशा तैयार करेगी जिससे अगस्त, 2008 में बीजिंग ओलंपिक से पहले परमपावन दलाई लामा बीजिंग का दौरा कर सकें। लेकिन चीन ने यह अवसर गवां दिया।

हालांकि वह अंतिम अवसर नहीं था। मेरा मानना है कि चीन को गंभीर और सही वार्ता करने और तिब्बती जनता की वाजिब आकांक्षाओं को मान्यता देने के इरादे के साथ परमपावन दलाई लामा से संपर्क करना चाहिए।

बीजिंग को बुद्ध के उपदेशों के इस जीवित अवतार से बढ़िया वाजिब और शांतिप्रिय वार्ताकार नहीं मिल सकता।

जहां तक भारत की बात है, तिब्बत की जनता की आकांक्षाओं को हमारा समर्थन चीन के साथ अनसुलझे सीमा विवाद से अलग है। सीमा विवाद सन 1962 में चीन के आक्रामक हमले के बाद और उलझ गया है। इस युद्ध के पहले चीन के प्रति भारत ने जिस तरह का भरोसा और दोस्ती का रिश्ता दिखाया था उसमें धोखा मिलने के बावजूद भारत ने चीन के साथ अपने संबंधों को सामान्य बनाने के लिए कदम उठाए।

यहां मैं श्री अटल बिहारी वाजपेयी के योगदान का खास उल्लेख करना चाहूंगा, जब वह साल 1977 में जनता पार्टी सरकार में विदेश मंत्री थे और 1998 से 2004 के बीच जब वह एनडीए सरकार के प्रधानमंत्री बने थे। निश्चित रूप से हमारी दूसरी सरकारों ने भी चीन के साथ संबंध सामान्य बनाने और सीमा विवाद को बातचीत से हल करने के लिए गंभीरता से प्रयास किया है। भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय संबंध 21वीं सदी में दुनिया का इतिहास तय करने में प्रमुख निर्धारक तत्वों में से एक होगा। भारत और चीन के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का कोई विकल्प नहीं है। इसके लिए दोनों देशों के बीच सीमा विवाद का शांतिपूर्ण समाधान जरूरी है। हालांकि, यदि चीन विरोधी बयान देता रहा, अपने आक्रामक एवं विस्तारवादी इरादे जताता रहा तो यह संभव नहीं होगा। उदाहरण के लिए अरुणाचल प्रदेश पर उसका दावा पूरी तरह से निराधार है।

पाकिस्तान द्वारा भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैए को चीन के मौन समर्थन से भारत–चीन संबंध और जटिल हो गए हैं।

मैं आशा करता हूं कि चीनी नेताओं में अच्छाई की भावना बनी रहे। जहां तक सीमा विवाद में भारत के हितों की रक्षा करने की बात है, इसमें पार्टी राजनीति के लिए कोई जगह नहीं है। इस बारे में सभी राजनीतिक पार्टियां एक हैं और आगे भी उन्हें एक बने रहना चाहिए।

इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात खत्म करता हूं और यह उम्मीद करता हूं कि यह सम्मेलन पूरी तरह सफल हो।

धन्यवाद।

तिब्बत को भी उसके मानवाधिकार मिलने चाहिएं भारतीय प्रतिनिधि श्री रफ़ीक ज़कारिया का 1965 में सं. राष्ट्र की आम सभा में तिब्बत के प्रश्न पर दिया गया भाषण

आप प्रतिनिधि लोग अच्छी तरह जानते हैं कि सं राष्ट्र संघ में पिछले 15 वर्षों में कई बार तिब्बत के प्रश्न पर विचार होता आया है। इस प्रश्न पर यहां सबसे पहले 1950 में महासभा के पांचवें सम्मेलन में विचार किया गया था लेकिन इसे कार्यवाही में नहीं रखा जा सका। वास्तविकता तो यह है कि उस समय मेरे देश ने ही इस प्रश्न को एजेंडा में शामिल करने का विरोध किया था क्योंकि तब हमें चीन ने यह विश्वास दिलाया था कि वह इस समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से हल करने के लिए उत्सुक है।

लेकिन तिब्बत में स्थिति सुधरने के बजाए बिगड़ती ही गई। तब से यह प्रश्न राष्ट्र संघ की महासभा के सामने विचार के लिए कई बार आ चुका है। 1959 में महासभा के 14 वें सम्मेलन में हुई बहस में हमारे प्रतिनिधिमंडल ने भाग लिया था।

तब हालांकि हमने इस सवाल पर हुए मतदान का बहिष्कार किया था लेकिन फिर भी हमने यह स्पष्ट कर दिया था कि इस क्षेत्र में जो कुछ भी हो रहा है उससे हम भी प्रभावित होते हैं तथा उसके प्रति हमें गहरी चिंता है क्योंकि भारत और तिब्बत के बीच बहुत नजदीकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संबंध हैं।

तब यह हमारी दुराशा ही थी कि चीनी पक्ष उचित व्यवहार करेगा और परिणामस्वरूप तिब्बत की जनता के उत्पीड़न का अंत होगा। लेकिन अब लंबा समय बीतने के बाद हम यह देख रहे हैं कि हमारी आशाएं एकदम निराधार थीं। ज्यों–ज्यों समय बीत रहा है त्यों–त्यों हालत पहले से भी अधिक बिगड़ती जा रही है। यहां की ये परिस्थितियां चिल्ला चिल्ला कर पूरी मानवता का ध्यान अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रही हैं।

हम सभी लोग जानते हैं जब से चीन ने तिब्बत पर कब्जा किया है तब से तिब्बत की जनता पर जिस तरह के घोर अमानवीय अत्याचार लगातार होते चले आ रहे हैं उसका दुनिया के पूरे इतिहास में कहीं उदाहरण नहीं मिलेगा। तथाकथित 'जनतांत्रिक सुधार' और 'प्रतिक्रान्ति' से लड़ने के नाम पर चीनियों ने वहां सबसे घटिया दर्जे का सामूहिक मानव हत्याकांड किया है और एक अल्पसंख्यक जाति का दमन किया है।

आरंभ में हम भारतीयों ने यह सोचा था कि शायद बदली हुई नई स्थिति में तिब्बतियों और चीनियों में और नजदीकी संपर्क बनने के कारण दोनों के बीच पहले से अधिक गहरे संबंध उभर कर आएंगे। असल में 1959 में मेरे देश में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू और चीनी प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन–लाई के बीच लंबी बातचीत के परिणामस्वरूप श्री नेहरू को यह विश्वास हो गया था कि दोनों पक्षों में इस सवाल पर समझौता हो जाएगा। माननीय दलाई लामा ने भी श्री नेहरू के सामने ऐसी ही आशा प्रकट की थी। लेकिन बाद की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि चीन कभी भी अपने वायदों पर अमल करने की नीयत नहीं रखता था।

स्वायत्तता का आश्वासन : हालांकि चीन ने आश्वासन दिया था कि वह तिब्बत को स्वायत्तता देगा और वहां के लोगों की सांस्कृतिक व धार्मिक विरासत की रक्षा करेगा। लेकिन जैसा कि 1959 में न्यायशास्त्रियों के अंतर्राष्ट्रीय आयोग (इंटरनेशनल कमीशन आफ जूरिस्ट्स) ने अपनी जांच रिपोर्ट में यह स्पष्ट कर दिया था कि चीन ने तिब्बत में– ''वहां के लोगों की सामूहिक हत्या और शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न करके वहां की राष्ट्रीयता तथा उसके अनुवांशिक, जातीय और धार्मिक व्यक्तित्व को नष्ट करने का प्रयास किया है।''

पूरा विश्व यह जानता है कि दलाई लामा द्वारा, जो कि तिब्बत के सबसे बड़े नेता हैं और जिन्हें सभी भारतीय एक धार्मिक नेता के रूप में आदर की दृष्टि से देखते हैं, ल्हासा से भागने और भारत में शरण लेने का अर्थ तिब्बत को गुलाम बनाए जाने और वहां हो रहे दमन का विरोध करना था। आज मेरे देश में तिब्बती शरणार्थियों की संख्या हजारों में है जो अपना घर बार व देश छोड़ कर अपने नेता के साथ वहां शरण लिए हुए हैं।

इन शरणार्थियों की हालत अभी भी दयनीय है क्योंकि चीन ने पूरे तिब्बत को एक फौजी छावनी में बदल दिया है और वहां रहने वाले तिब्बती अपने ही देश में गुलामों का जीवन जीने पर मजबूर हो रहे हैं।

हालांकि भारत और तिब्बत के बीच सदियों पुराने संबंध हैं और युगों से ये संबंध धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों में लगातार फलते फूलते रहे हैं। लेकिन फिर भी हम तिब्बत की समस्या का राजनैतिक उपयोग नही करना चाहते। हाल ही के वर्षों में इन तथ्यों के बावजूद कि दलाई लामा और उनके हजारों अनुयाइयों ने भारत में शरण ली है

और चीन ने तिब्बत की ही धरती से हमारे देश की उत्तरी सीमाओं पर हमला किया, हमने इस स्थिति का राजनैतिक फायदा उठाने का प्रयास नहीं किया।

इसमें कोई शक नहीं कि बार–बार चीन द्वारा तिब्बत वासियों पर किए जाने वाले अत्याचारों के बावजूद हमने अत्याधिक संयम बरता है। इसका कारण यह है कि हम यह विश्वास करते हैं कि असली समस्या जिसे हल किया जाना चाहिए वह यह है कि भोले भाले तिब्बत वासियों पर महज इसीलिए अत्याचार किए जा रहे हैं क्योंकि वे चीनियों से जातीय और सांस्कृतिक आधार पर अलग लोग हैं।

इस समय यदि मैं इस सम्मानित सदन के सामने कुछ तथ्य रखूं तो अनुचित नहीं होगा। तिब्बत के प्रति चीन की नीति से संबंधित ये तथ्य ऐसे हैं जिन्हें किसी भी आधार पर झुठलाया नहीं जा सकता। ये तथ्य हैं :–

1. तिब्बत व चीन के बीच 1951 में जो समझौता हुआ था उस पर बिल्कुल पालन नहीं किया गयाा और यह मृतप्राय रहा।

2. चीन ने अपने लगातार बढ़ती फौजी ताकत से तिब्बत की स्वायत्तता का पूरी तरह गला घोंट दिया।

3. तिब्बती मंदिरों, नागरिकों तथा तिब्बत के सरकारी संस्थानों की संपत्ति को जबरदस्ती हथिया लिया गया।

4. तिब्बतियों की धार्मिक स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया गया तथा बौद्ध धर्म, लामा व्यवस्था, बौद्ध मंदिरों, तीर्थ स्थलों और महत्वपूर्ण भवनों को समाप्त किया जा रहा है।

5. तिब्बतियों को किसी भी तरह की जानकारी प्राप्त करने या अपने विचार प्रकट करने की आजादी नहीं दी गयी है।

6. ऐसे तिब्बतियों की जो कि तिब्बत पर चीनी शासन के विरोध में सक्रिय रूप से काम करते रहे हैं हत्या किए जाने, जेल में डालने और उन्हें उनके इलाके से निकाल दिए जाने की योजनाबद्ध नीति अपनायी गयी है।

7. चीन द्वारा भारी संख्या में तिब्बती बच्चों को तिब्बत से चीन ले जाया जा रहा है जिससे उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को समाप्त किया जा सके, इन्हें चीनी विचारधारा के सांचे में ढाला जा सके और उनके दिलों

से तिब्बती धर्म, संस्कृति और जीवन पद्धति को मिटाया जा सके।

8. इसी तरह तिब्बत में भारी संख्या में चीनियों को बसाया जा रहा है जिससे पूरे तिब्बत का चीनीकरण किया जा सके और तिब्बती जनता के मुकाबले वहां की जनसंख्या में चीनियों की संख्या को बढ़ाया जा सके।

तिब्बती जनता की भावनाओं और इच्छाओं को पूरी तरह कुचल कर और जिस निर्दयता से ये अत्याचार किए जा रहे है वे न केवल उन मानवीय उसूलों के एकदम खिलाफ हैं जिन्हें आम तौर पर स्वीकार किया जाता है बल्कि एक पूरी जाति को कुचले जाने के भयावने षड़यंत्र का चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। ये सारे अत्याचर कुल मिलाकर उन सभी अत्याचारों से अधिक हैं जो किसी भी उपनिवेशवादी शक्ति ने अब तक अपने गुलाम लोगों पर किए हैं। यही कारण है कि पहले 1959 में और बाद में 1961 में दो बार सं. राष्ट्र संघ में प्रस्ताव पारित किए गये जिनमें चीन द्वारा तिब्बतियों के मानवाधिकार छीनने की आलोचना की गयी थी और चीन से तिब्बतियों को ये अधिकार वापिस दिए जाने की अपील की गयी थी। लेकिन ये सब दलीलें चीन द्वारा अनसुनी कर दी गयीं।

माननीय अध्यक्ष महोदय, क्या ऐसी स्थिति पूरी मानवता को चुनौती नहीं है? क्या हम यहां उपस्थित देश जो कि सं. राष्ट्र संघ घोषणा पत्र और अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा पत्र को समर्थन देने का दम भरते हैं उस भयानक त्रासदी का महज दर्शक मात्र बन कर रह सकते हैं जिसे अत्याचारी और दमनकारी सरकार द्वारा तिब्बत में खेला जा रहा है। हाल ही में दलाई लामा ने, जो कि आत्म संयम, शांति, बल्कि नम्रता का एक विशिष्ट उदाहरण हैं, महासचिव महोदय को भेजी गयी अपील में (यह अपील दस्तावेज ए–6481 में शामिल है) इस संस्था को चेतावनी दी है कि यदि चीन को नियंत्रित नहीं किया गया तो चीन ''तिब्बती जाति को समूल नष्ट करने के लिए और भी भयानक हथकंडे अपनाने की कोशिश करेगा।''

माननीय अध्यक्ष महोदय, आज तिब्बती जनता जिन मुश्किलों का सामना कर रही है उनकी कोई सीमा नहीं है। यहां तक कि तिब्बती जनता के भोजन पर भी चीनियों का नियंत्रण है। चीन पहले तिब्बत में मौजूद अपनी फौज के भोजन की व्यवस्था करता है और उसके बाद जो कुछ बचता है उसे स्थानीय तिब्बती जनता के लिए छोड़ता है।

तिब्बत में जो दर्दनाक हालत है और उसमें जिस तरह लगातार

बिगड़ाव आ रहा है उसके प्रति मेरे प्रतिनिधि मंडल का चिंतित होना एकदम स्वभाविक है। पिछले साल से चीन ने अपने उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए बहुत जतेजी से कदम बढ़ाए हैं जिसे वह ''तिब्बत को चीन में आत्मसात'' किए जाने की बात कहता है। 17 दिसंबर 1964 को चीन ने दलाई लामा को औपचारिक रूप से तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र की तैयारी समिति के अध्यक्ष पद से हटाने की घोषणा करते हुए उन्हें ''विस्तारवाद और विदेशी प्रतिक्रियावादियों का न सुधरने वाला कुत्ता'' कहा है। इसके तुरंत बाद 30 दिसंबर को ही पंचेन लामा को भी, जिन्हें अपने साथ मिलाने के लिए चीन ने बहुत जोर लगाया था, हटा दिया गया और उन्हें ''गुलाम पालने वाले प्रतिक्रियावादी मालिकों के गिरोह का सरदार घोषित कर दिया गया।''

और इस तरह चीन ने तिब्बत के साथ अपने बचे खुचे राजनैतिक व उसके राजनैतिक–धार्मिक ढांचे से संबंध भी समाप्त कर लिया है और अपनी उस नीति पर भी गहरा आघात किया है जिसके अंतर्गत वह तिब्बत की 'विशिष्ट परिस्थिति' की बात कहता रहा है। और जिस तरह तिब्बत को कथित रूप से आत्मसात किए जाने का कार्य आगे बढ़ रहा है उसी गति से तिब्बती किसानों से उनकी जमीन छीनने और उनकी संपत्ति को बांटे जाने का काम भी तेज होता जा रहा है। क्योंकि बार–बार सामंती–तत्वों की परिभाषा को विस्तृत किया जा रहा है जिससे कि अधिक से अधिक किसान उस परिभाषा में आ जाएं।

असल में इन तथाकथित भूमि सुधारों का लक्ष्य चीनी सरकार की राजनैतिक चालों को पूरा करना और अंत में सभी चीनी किसानों को चीनी व्यवस्था के गुलामों में बदलना है। असलियत यह है, कि पीकिंग के शासक इस बात पर तुले हुए हैं कि पूरी तिब्बती जाति को नष्ट कर दिया जाए। उनकी तिब्बतयों के प्रति नीति डराने धमकाने की है; और यही नीति औरों के बारे में भी हैद्ध। वे दूसरें देशों में क्रान्ति के निर्यात की नीति की घोषणा करते हैं तथा न केवल युद्ध को अवश्यंभावी मानते हैं बल्कि उसे आवश्यक भी मानते हैं। और इस तरह शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का गला घोंटने की कोशिश करते हैं।

लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि हम निराश हो जाएं? किसी भी जाति का बहुत देर तक दमन नहीं किया जा सकता। विश्व समाज में मेरा पूरा विश्वास है। मैं यह मानता हूं कि यह समाज तिब्बत की जनता को उसकी उन सब स्वतंत्रताओं को वापिस दिलाने में सहायक होगा

जिनका हमने अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणा पत्र में पूरे समर्पण की भावना से समावेश किया है।

जहां तक भारत का संबंध है हम सं. राष्ट्र को यह आश्वासन दिलाते हैं कि पहले की तरह हम आगे भी तिब्बती शरणार्थियों को सभी सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे और ऐसा हर संभव प्रयास करेंगे जिससे उनकी कठिनाइयों और दुखों को कम किया जा सके। दलाई लामा जो अब कई सालों से हमारे यहां रह रहे हैं, अपनी धार्मिक व दूसरी गतिविधियों को हमारी रोक टोक के बिना चला रहे हैं। हम उन्हें व उनके सादे व शांति प्रिय लोगों को यह आजादी और अपना आतिथ्य देते रहेंगे हालांकि हम हृदय से यह आशा करते हैं कि वह दिन जल्दी ही आएगा जब वह और उनके अनुयायी अपनी मातृभूमि को वापिस लौट सकने की हालत में आ जाएंगे।

ये सब वे कारण हैं जिनके आधार पर हम तिब्बती जनता का पूरी तरह और पूरे दिल से समर्थन करते हैं। जिस तरह की दयनीय स्थिति में वे हैं और जिस भयानक ढंग से पीकिंग के शासकों के हाथों उन्हें दमन सहना पड़ रहा है उसके लिए हमारी पूरी सहानुभूति उनके साथ है। हालांकि इसी पीकिंग सरकार ने हमें उकसाया है और लगातार उकसाने की कोशिश कर रही है। फिर भी हमने चीन के साथ अपने टकराव में तिब्बती शरणार्थियों को बंधक के रूप में नहीं प्रयोग किया है।

हम इस बात में विश्वास नहीं करते कि किसी एक जाति के लोगों के दुखों को दूसरी जाति की तोपों के बारूद की तरह इस्तेमाल किया जाए। हमारा तो यह विश्वास है कि अपने पड़ोसियों के साथ संबंधों में संयम बरता जाए। हालांकि सच तो यह है कि हमारे कुछ पड़ोसियों ने हमारे साथ अपने जुबानी और कार्य व्यवहार से निहायत घटिया दर्जे की पाशविकता का परिचय दिया है।

आखिर में मैं सं. राष्ट्र संघ की ओर से आशा व्यक्त करना चाहूंगा कि चीन में दमन और दुख की मौजूदा हालत समाप्त होगी और तिब्बत की जनता भी उन मानवाधिकारों को प्राप्त करेगी जिन्हें प्रयोग करने के अधिकार का सौभाग्य हम सब देशों के लोगों को है।

माननीय अध्यक्ष महोदय, मेरा प्रतिनिधिमंडल मतदान में प्रस्तावित मसौदे के समर्थन में वोट देगा और ऐसा ही सुझाव इस सम्मानित सदन के दूसरे सदस्यों को भी देता हूं।

प्रारम्भिक इतिहास

तिब्बत राष्ट्र के लिखित इतिहास की शुरुआत 629 ई0 में राजा सोंङ सन गम्पो के शासन काल से मानी जाती है जब तिब्बत एशिया की महान सैन्य शक्तियों में से एक बना। राजा सोङ सन गम्पो ने तिब्बत की सीमाओं पर स्थित अनेक राज्यों को विजय करके अपने अधीन किया। उसने पश्चिमी चीन पर आक्रमण किया तथा चीनी और नेपाली शासकों को शांति के लिए दो राजकुमारियों का उसके साथ विवाह करने पर बाध्य किया।

सातवीं से नवीं शताब्दी तक तिब्बत और चीन में प्रायः युद्ध होते रहे। दूसरी शताब्दी के उत्तरार्ध में तिब्बत की सेनाओं द्वारा पश्चिमी चीन पर प्राप्त की गई विजय का विषद वर्णन पोताला के नीचे स्थित शिला–स्तम्भ पर अंकित है। एक बार तो चीन की राजधानी को भी हस्तगत कर लिया गया; चीनी नरेश को पलायन करना पड़ा और तिब्बत ने एक नये नरेश को सिंहासन पर बैठा दिया।

इस अवधि में तिब्बत–चीन सम्बन्ध समानता तथा पारस्परिकता पर आधारित थे। 821 ई0 में हुई शान्ति संन्धि जो कि ल्हासा स्थित केन्द्रीय मन्दिर के सामने एक शिला–स्तम्भ पर अंकित है इस तथ्य की गवाह हैं इस सन्धि की शर्तों के अनुसार चीन तथा तिब्बत के नरेशों ने यह प्रण किया कि कोई भी एक दूसरे का निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करेगा। यह तथ्य कि उस समय तिब्बत एक स्वतन्त्र राष्ट्र था इस सन्धि तथा अन्य कई ऐतिहासिक स्रोतों से प्रमाणित हो जाता है तथा चीन वाले भी इस तथ्य पर आपत्ति नहीं करते।

मंगोल प्रभाव

चीन सहित एशिया के अधिकांश देशों तथा यूरोप के एक बड़े भाग की तरह तिब्बत भी तेरहवीं शताब्दी में मंगोल प्रभुत्व के नीचे आ गया। चीन पर विजय प्राप्त करने तथा युआन वंश को राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने के पूर्व मंगोल खानों का तिब्बत पर प्रभाव स्थापित हो गया था। कुबलाई खान ने तिब्बत का बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और उसमें साक्य मठ के प्रमुख लामा को सर्वोच्च धर्म प्रवक्ता तथा अपने व्यक्तिगत गुरु के रुप में मान्यता प्रदान की। उसने उन्हें तिब्बत के राज्याध्यक्ष पद पर भी स्थापित किया ! लेकिन साक्य लामाओं का स्वामित्व अधिक चिरस्थायी न रहा और अन्ततः तिब्बत के द्वितीय राजतन्त्र का श्री–गणेश हुआ।

चौदहवीं से बीसवीं शती तक तिब्बत के विदेश सम्बन्ध

स्थानीय चीनी मिंग वंश (1368–1644), जो मंगोल युआन वंश का उत्तराधिकारी बना, तिब्बत के साथ बहुत नगण्य सम्बन्ध थे तथा अधिकार बिल्कुल नहीं। दूसरी ओर, मांचू लोग जिन्होंने चीन को विजित किया और सतरहवीं शताब्दी में चिंग वंश की नींव डाली, ने मंगोल लोगों की भान्ति तिब्बत का बौद्ध धर्म ग्रहण किया और तिब्बत वासियों के साथ सुदृढ़ सम्बन्धों को विकसित किया। उस समय तक दलाई लामा न केवल बौद्ध धर्म के सर्वोच्च अगुआ बल्कि राज्याध्यक्ष भी बन गये थे। उनको एशिया भर में अत्यन्त आदर का स्थान प्राप्त था तथा मांचू नरेशों का उनके प्रति वही दृष्टिकोण था जो कि ईसाई नरेशों का पोप के प्रति था। दोनों व्यक्तियों के मध्य बौद्ध गुरु तथा संरक्षक का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। दलाई लामा आध्यात्मिक गुरु तथा पथ प्रदर्शक थे तो मांचू नरेश उनका एक साधारण पुजारी पक्षधर तथा संरक्षक। आने वाले वर्षों में इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर मांचू लोगों ने दलाई लामा तथा तिब्बत के लोगों की सहायता की। तिब्बती मांचू सम्बन्धों के फलस्वरुप तिब्बत कदापि चीन का अधिनस्थ राज्य नहीं बना।

1652 में चिंग प्रथम नरेश के निमंत्रण पर पंचम दलाई लामा पीकिंग पधारे। तिब्बत के राज्याध्यक्ष तथा समस्त मध्य एशियाई बौद्धों के नेता की अगवानी के लिए चीन नरेश अपनी राजधानी से चार दिन की यात्रा करके लिवाने आया। चीनी नरेश ने दलाई लामा के साथ हर प्रकार से वैसा ही व्यवहार किया जैसा कि एक स्वतन्त्र राज्याध्यक्ष से किया जाता है।

1720 में सप्तम दलाई लामा को, जो कि अभी बच्चे ही थे, कुमबम मठ से पूर्वी तिब्बत में ल्हासा में उनको सिंहास्नारुढ़ करने हेतु ले जाने के लिए मांचू नरेश ने संरक्षक के नाते सैनिक संरक्षक दल भेजने का प्रस्ताव किया।

जुंगर मंगोल ने 1717 में तिब्बत पर आक्रमण करके उसे तीन वर्ष से अपने अधिकार में लिया हुआ था और अब भी जनता को धमकियां दे रहे थे। तिब्बत सरकार की सहमति से चीन नरेश के सैनिकों ने सुरक्षा प्रदान की। कुछ वर्ष पश्चात् नरेश ने ल्हासा में दो मांयू अम्बन (स्थायी दूत) भी

नियुक्त कर दिये ताकि वे उसका प्रतिनिधित्व करें और दलाई लामा के सुरक्षा कर्मी भी बने। जब मांचू सेनायें तिब्बत से चली गई तो भी दोनों दूत ल्हासा में ही बने रहे। समय पाकर वे प्रभावशाली हो गए और कभी कभार राज्य प्रबन्ध में भी दखल देने लगे। अपितु कुछ वर्षों से ऊपर किसी एक समय पर उनका प्रभाव बना न रह सका।

इस दूतों को ल्हासा में उपस्थिति को चीन वाले तिब्बत पर अपने प्रभुत्व का प्रमाण जतलाने की चेष्टा करते रहते हैं। तिब्बत स्रोत इस दावे का खंडन करते हैं। देजोदेरी जो कि 1716 से लेकर पांच साल तक ल्हासा में रहा, ने वस्तुस्थिति का यों वर्णन किया है :–

''तिब्बत के सर्वोच्च लामा को न केवल द्वितीय तथा तृतीय तिब्बत में मान्यता तथा आदर प्राप्त है बल्कि नेपालियों, तातारियों और चीनियों द्वारा भी। वे उनकी पूजा करते हैं और उन्हें भेंट चढ़ाते हैं। समस्त तिब्बत के एकमात्र स्वामी होने के नाते धार्मिक तथा प्रबन्धकीय मामलों पर उनका शासन चलता हैं।... चीनी नरेशों ने उनके अपने अगाध आदर को प्रदर्शित किया हैं, प्रायः उन्होंने उपहार देकर राजदूतों को भी उनके पास भेजा है।''

हंक तथा गेबे–दो लाज़ारी पादरियों द्वारा जो कि 1846 के आस पास ल्हासा में थे, प्रकट किया गया मत भी देज़ीदेरी के मत की पुष्टि करता है। वे लिखते हैं कि ''तिब्बत की सरकार पोप सरकार जैसी है तथा चीनी (अर्थात् मांचू) दूतों की स्थिति वही हैं जो रोम स्थित आस्ट्रियन दूत की।''

1792 में नेपाल के गोरखों ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। दलाई लामा ने (चीनी) नरेश से सहायता मांगी परन्तु चीनी सैनिकों के पहुंचने से पूर्व ही गोरखे पराजित हो चुके थे। अतः इस बार भी मांचू सैनिक तिब्बत प्रशासन की अनुमति से ही तिब्बत में दाखिल हुए थे।

यद्यपि आज चीनी दावा करते हैं कि इसी अवधि में चीन का तिब्बत पर प्रभुत्व व प्रभुसत्ता कायम हुई फिर भी यह दावा तत्कालीन तथ्यों तथा चीन–तिब्बत सम्बन्धों की मूल भावना का खंडन करता है। ''प्रभुत्व अथवा ''प्रभुसत्ता'' अस्पष्ट संदिग्ध शब्द हैं जो कि पश्चिमी राजनैतिक शब्दावली से लिये गये हैं तथा वे महागुरु तथा शिष्य के विशिष्ट बौद्ध रिश्ते को वर्णित

करने में अनुपयुक्त हैं। सब तिब्बती दस्तावेज़ जो तिब्बती लामाओं तथा मंगोल और मांचू शासकों के सम्बन्धों का ज़िक्र करते हैं इस रिश्ते के लिये ''चो योङ'' शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ है ''आध्यात्मिक गुरु–धार्मिक शिष्य''। चीनी ऐसी कोई भी लिखित दस्तावेज प्रस्तुत करने में असमर्थ है जिस पर तिब्बती हस्ताक्षर हो या मोहर लगी हो और उसमें चीनी प्रभुसत्ता तो क्या चीनी प्रभुत्ता को भी मान्यता प्रदान की गई हो।

चीन वाले इस बहानेबाजी में सदैव निपुण रहे हैं कि जिस भी विदेशी शक्ति से इनके थोड़े भी सम्बन्ध रहे उसको इन्होंने चीन के अधीनस्थ कह दिया। यह सर्वविदित है कि इंग्लैड की महारानी विक्टोरिया तथा पोप ने चीन में जब अपने दूत भेजे तो मांचू नरेश ने अपने उन ''अधीनस्थों'' द्वारा भेजे गये उपहारों के लिए आभार प्रकट किया। परवर्ती चीनी इतिहास ग्रन्थों में इंग्लैंड, वेटीकैन, हालैंड, पुर्तगाल, रूस तथा अनेक एशियाई देशों को चीन के ''अधीनस्थ'' देशों की सूची में ही रखा गया।

इन्टरनेशनल कमीशन ऑफ जूरिस्ट्स (अन्तर्राष्ट्रीय विधि विशेषज्ञ आयोग) द्वारा तिब्बत के सम्बन्ध में गठित कानूनी जांच समिति ने अपनी रिपोर्ट ''तिब्बत एण्ड दी रूल ऑफ ला'' में तिब्बत की स्वतन्त्र स्थिति के बारे में अनभिज्ञता की ओर यों संकेत किया है–

''लगता है कि चीनी अर्थात मांचू दूतों की ल्हासा में उपस्थिति से दार्जीलिंग स्थित बर्तानवी प्रतिनिधि ने यह धारणा बना ली कि चीन का कम से कम कुछ वास्तविक प्रभुत्व तो तिब्बत पर था। अतः 1876 में बर्तानिया तथा चीन के मध्य एक सन्धि हुई जिस में, और बातों के अतिरिक्त, यह भी तय हुआ कि चीन सरकार तिब्बत में खोजहित जाने वाले एक ब्रिटिश शिष्टमंडल के लिये उपयुक्त प्रबन्ध जुटाएगी। चीन सरकार को तिब्बत के बाधा विरोध का सामना करना पड़ा क्योंकि तिब्बत सरकार इस सम्मेलन को मान्यता नहीं दी। अतः अंग्रेजों ने भी तिब्बत जाने की कोई चेष्टा नहीं की और 1886 में तिब्बत पहुंचे बिना ही यह शिष्टमंडल भंग करना पड़ा। बर्तानिया के चीन के साथ सम्बन्ध चलते रहे तथा जिस सीमा तक बर्तानिया–चीन समझौते द्वारा दिए गए अधिकार प्राप्त कराने में चीन का महत्व था उसी सीमा तक वह समझौता बर्तानिया के लिए तिब्बत पर चीनी अधिकारों का द्योतक मार्ग–दर्शक बनता गया।

1893 में बर्तानिया तथा चीन के मध्य व्यापार नियमों पर हस्ताक्षर किए

गए। तिब्बत सरकार इस अनुबन्ध में भागीदार नहीं थी; अतः उसके इसकी शर्तों के पालन से इन्कार कर दिया जैसे कि उसने 1876 की कन्वेंशन को मानने से किया था। इन अनुबन्धों की शर्तों को बल–पूर्वक मनवाने के लिए 1903 में ब्रिटेन ने तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। तिब्बती सेना को परास्त कर कर्नल यंग हज़बेंड ल्हासा पहुंचा तथा उसने 7 सितम्बर 1904 को तिब्बत सरकार की एक द्विपक्षीय सन्धि पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया। इस सन्धि में ब्रिटेन तथा तिब्बत दो ही वर्ग थे। उपरोक्त सन्धि का नवां अनुच्छेद यों है :–

तिब्बत सरकार वचन बद्ध है कि बिना ब्रिटिश सरकार की पूर्व सहमति के

(क) तिब्बती प्रदेश का कोई भी भू–भाग किसी भी विदेशी शक्ति को न हस्तान्तरित किया जाएगा न बेचा जायेगा, न पट्टे पर दिया जायेगा, न गिरवी रखा जायेगा, न किसी प्रकार से किसी को अधिग्रहण करने दिया जायेगा;

(ख) ऐसा किसी भी शक्ति को तिब्बत के मामलों में दखल देने की अनुमति नही दी जाएगी;

(ग) किसी भी विदेशी के प्रतिनिधि अथवा एजेंट को तिब्बत प्रवेश की अनुमति नही होगी;

(घ) किसी भी विदेशी शक्ति अथवा उसके अधीनस्थ को रेलवे, सड़कों, टेलीग्राफ, खनन सम्बन्धी कोई भी रियायतें अथवा अन्य कोई अधिकार न दिये जायेंगे। यदि ऐसे अधिकारों को अनुमति मिल जाए तो वैसी ही और उतनी ही रियायतें ब्रिटिश सरकार को भी दी जायेंगी।''

(ङ) किसी प्रकार की तिब्बती आय, चाहे धन राशि के रुप में, चाहे वस्तु रुप में, किसी भी विदेशी शक्ति को अथवा अन्य उसके किसी अधीनस्थ व्यक्ति को नहीं दी जायेगी, न उसके नाम अनुबन्धित की जायेंगी।''

पीकिंग की शाही सरकार उपरोक्त कन्वेंशन (समागम) में भागीदार न थी। वास्तविकता तो यह है कि आक्रमण के समय उसने न कोई विरोध प्रकट किया और न ही ब्रिटिश सेनाओं का मुकाबला किया जैसे कि वह

कर सकती थी यदि तिब्बत चीन का अभिन्न अंग होता या मांचू साम्राज्य का संरक्षित प्रदेश होता।

तत्कालीन स्थिति का उपयुक्त वर्णन भारत के वायसराय लार्ड कर्जन के इन शब्दों में हुआ है–''तिब्बत पर चीन को प्रभुसत्ता एक संवैधानिक गल्प है, एक ढोंग जिसे केवल मात्र दोनों पक्षों की सुविधा के लिए जीवित रखा गया है।''

1906 में चीन ने अंग्रेजी तिब्बती सन्धि की मान्यता के रुप में बर्तानिया के साथ एक कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए, परन्तु एक वर्ष पश्चात ही ईरान, अफगानिस्तान तथा तिब्बत से सम्बन्धित एक द्विपक्षीय समझौते के अनुसार ब्रिटिश तथा रुसियों ने तिब्बत पर चीन के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार हस्ताक्षर करने वाले दोनों देशों के एशिया–स्थित प्रभाव क्षेत्रों को भी रेखांकित किया गया। क्योंकि न तिब्बत न चीन इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने वालों में थे इसलिए कानूनी तौर पर इसका अंग्रेजी–तिब्बती सम्बन्धों पर कोई प्रभाव न पड़ सकता था। तथापि इसके द्वारा मांचू सरकार को तिब्बत पर अपना नियंत्रण जमाने के प्रयत्नों में बढ़ावा मिला। 1910 में चीनी मांचू सेनाओं ने तिब्बत पर धावा बोल दिया।

1910 का मांचू आक्रमण तिब्बत के उसके पूर्ववर्ती पड़ोसी के साथ सम्बन्धों में एक नया मोड़ का कारण बना। इससे पहले के मांचू (सैनिक) अभियान दलाई लामा की सहायतार्थ आयोजित हुए थे और उन द्वारा कभी तिब्बत के राज प्रबन्ध को हथियाने का प्रयास न हुआ था। चिंग साम्राज्य के पास आधुनिक हथियार तथा आधुनिक प्रशिक्षण था; उसे पूर्व कालीन शिष्टाचार से, जिसमें राजनीति तथा धर्म का सम्मिश्रण होता था, भी कोई बास्ता न था सैनिक सफलता के बावजूद भी तिब्बत पर उनका कब्जा बहुत अल्पकालीन रहा।

1911 में जब मांचू वंश का पतन हुआ तो तिब्बत स्थित शाही सेनाओं ने विद्रोह कर दिया और तिब्बत के लोगों ने भी उन पर आक्रमण कर दिया। अगले वर्ष ही उन्होंने तिब्बती सेनिकों के आगे हथियार डाल दिए और उन्हें वापिस चीन की निष्कासित कर दिया गया।

1913 में तेरहवें दलाई लामा तथा तिब्बत की राष्ट्रीय अमेम्बली ने तिब्बत की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

इस संदर्भ में बलगेरिया का उदाहरण पर्याप्त है। बलगारिया जो तुर्की साम्राज्य के प्रभुत्व के नीचे ने 1980 में इसी प्रकार की घोषणा की थी जिसमें कि तुर्की के प्रभुत्व को रद्द किया था। तुर्की के इस प्रभुत्व को 1878 की बलिन सन्धि के अन्तर्गत यूरोपियन समुदाय ने मान्यता प्रदान की हुई थी परन्तु बलगेरिया द्वारा की गई एक पक्षीय घोषणा को विश्व समुदाय ने स्वीकृति दे दी यद्यपि तिब्बत ने कभी चीन के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया था तो भी तेरहवें दलाई लामा की घोषणा भी उस (अर्थात् बलगारिया की) घोषणा जैसी थी और अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि में वैसी ही अर्थपूर्ण।

1913 में तिब्बत तथा मंगोलिया के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे की स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान की।

इस प्रकार तिब्बत ने अपने पूर्णतया स्वतन्त्र होने की बात दोहराई थी।

बींसवी शती में तिब्बत के विदेश सम्बन्ध

सन–यत–सेन द्वारा स्थापित किए नये चीनी गणराज्य से तिब्बत पूर्णतया स्वतन्त्र था। परन्तु चीन के प्रधान युआन शी काई का दावा था कि तिब्बत चीन का एक अंग था; अतः इस दावे को चरितार्थ करने के लिए उसने एक सैनिक अभियान तिब्बत भेजने की सोची। इस उद्देश्य से कि चीन और तिब्बत के मध्य एक लम्बा संघर्ष न छिड़ जाये, ब्रिटिश मध्यस्थता के फलस्वरुप भारत के नगर शिमला में अक्टूबर 1913 में एक वि–पक्षीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। तिब्बत चीन तथा बर्तानिया के प्रतिनिधियों ने समान अधिकार में एक बैठक में भाग लिया तथा समझौता वार्ता की।

बर्तानिया भारत की उत्तरी सीमा पर शांति का इच्छुक था; अतः इस सम्मेलन में उसने तिब्बत को चीन के नाम मात्र प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिये मना लिया इस शर्त पर कि चीन तिब्बत की प्रादेशिक अखण्डता तथा पूर्ण स्वायत्तता का वचन देगा। घटनाक्रम यों हुआ कि चीन सरकार बाद में इस अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करने से मुकर गई।

3 जुलाई 1914 को तिब्बत तथा ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने इस अनुबन्धे पर हस्ताक्षर कर दिये तथा उन्होंने एक द्विपक्षीय घोषणा पर हस्ताक्षर

किए जिसके अनुसार चीन के लिए उन सब रियायतों का निराकरण कर दिया गया जो कि उसे उपरोक्त अनुबन्ध के अनुसार प्राप्त थीं। अंग्रेजी तिब्बती घोषणा से एक उदाहरण :–

''हम, बर्तानिया तथा तिब्बत के प्रतिनिधि दूत, यहां इस आशय की निम्नलिखित घोषणा को अंकित करते हैं कि हम संलग्न कन्वेन्शन को जो हस्ताक्षरित है बर्तानिया तथा तिब्बत की सरकारों पर लागू मानते है, तथा हम सहमत हैं कि जब तक चीन की सरकार उपरोक्त कन्वेन्शन को हस्ताक्षरित नहीं करती वह उससे उत्पन्न होने वाले सब विशेषाधिकारों से वंचति रहेगी। एतदर्थ प्रमाण स्वरुप हमने इस घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिए हैं तथा मोहर लगा दी है दो प्रतियां अंग्रेजी में तथा दो पक्तियां तिब्बती भाषा में।''

इसके अनुसार तिब्बत का दर्जा वही रही जो कि कन्वेन्शन में प्रवेश से पूर्व था एक स्वतन्त्र राज्य का दर्जा जिसकी चीन के प्रति प्रतिबद्धता नहीं थी।

1934 में तेरहवें दलाई लामा के निधन पर चीन द्वारा भेजे शोकदल की तिब्बत सरकार ने ल्हासा में अगवानी की। उस समय एक चीनी प्रतिनिधि को वहां रुक जाने की अनुमति प्रदान की गई तथा उसे वही दर्जा दिया गया जो कि नेपाली तथा ब्रिटिश प्रतिनिधियों को प्राप्त था। यह प्रतिनिधि 1949 में (तिब्बत से) अपने निष्कासन तक वहां रहा।

द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटिश तथा अमेरीकी सरकारों ने अपने सहयोगी चीन के लिये तिब्बत के रास्ते युद्ध सामग्री लेकर जाने की अनुमति मांगी। राष्ट्रपति रुज़वेल्ट ने तिब्बत का सहयोग प्राप्त करने हेतु अपने प्रतिनिधि ल्हासा भेजे परन्तु तिब्बत सरकार अपनी गुट–निरपेक्ष नीति पर अड़िग रही तथा उसने अपने इलाके से केवल असैनिक सामग्री ले जाने की ही अनुमति दी।

भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति से कुछ ही मास पूर्व 1947 में दिल्ली में होने वाली एशियन रिलेश्न्स कान्फ्रेंस (एशिया) समबन्ध सम्मेलन में भाग लेने के लिये निमन्त्रित किये गये तिब्बत के प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों ने तिब्बती पासपोर्टों से यात्रा की ओर एक स्वतन्त्र राष्ट्र के प्रतिनिधियों के रुप में भाग लिया।

भारत में सत्ता हस्तान्तरण के पश्चात् भारत को बर्तानिया की तिब्बत से हुई सन्धियों के पालन का दायित्व मिला तथा दोनों सरकारें उन्हीं सम्बन्धों पर आधारित द्विपक्षीय सम्बन्धों को जारी रखने पर सहमत हुई।

1948 में जब तिब्बत सरकार का व्यापार शिष्टमंडल भारत, फ्रांस इटली, बर्तानिया तथा अमरीका के दौरे पर गया तो, तिब्बत सरकार द्वारा दिए गए उसके पासपोर्ट को इन देशों सहित अन्य सरकारों नें वैध माना। यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि सदा ही तिब्बत की अपनी डाक व तार सेवाये तथा प्रशासकीय सेवायं अपने अलग सिक्के तथा पत्र मुद्रा, एक राष्ट्रीय सेना तथा अपने ही गोली सिक्के के कारखाने भी रहे थे।

उपलिखित तथ्य ऐतिहासिक तथ्यों में से कुछ एक है जो तिब्बत की एक स्वतन्त्र राष्ट्र रहने के परिचायक है, जब 1949 में साम्यवादी चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया तो वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थिति में था और उन सब मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था जो राज्यत्व की परिभाषा है अर्थात एक कौम, एक निर्धारित भू–भाग तथा वह राज्य सत्ता जो दूसरे देशों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम थी।

उपरोक्त निष्कर्षों को इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले लगभग सब विद्वानों का समर्थन प्राप्त है।

क्या आप जानते हैं ?

» बारह लाख से अधिक तिब्बती मारे जा चुके है।

» 6000 से अधिक मठों को नष्ट किया गया है।

» हजारों तिब्बती चीन की जेलों में कैद है।

» परमपावन दलाई लामा को 1959 में तिब्बत छोड़ने को मजबूर किया गया है।

» 60 लाख तिब्बती जनता पर 75 लाख चीनी नागरिकों की भीड़ लाद दी गई है।

» चीनी उपनिवेशवाद के विरुध शांतिपूर्ण प्रदर्शन करने पर तिब्बती लोगों की गिरफ्तारी और हत्या की जाती है।

» तिब्बत का प्राकृतिक पर्यावरण रासायनिक एवं परमाणविक हथियारों का भंडारण करके नष्ट किया जा रहा है।

» तिब्बत के भीतर सन 2009 से अब तक लगभग 140 से अधीक तिब्बतियों ने तिब्बत में धार्मिक आजादी तथा परमपावन दलाई लामा को तिब्बत वापस बुलाने के लिए आत्मदाह किया है।